वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

वर्ष ५८ अंक ७ जुलाई २०२०

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

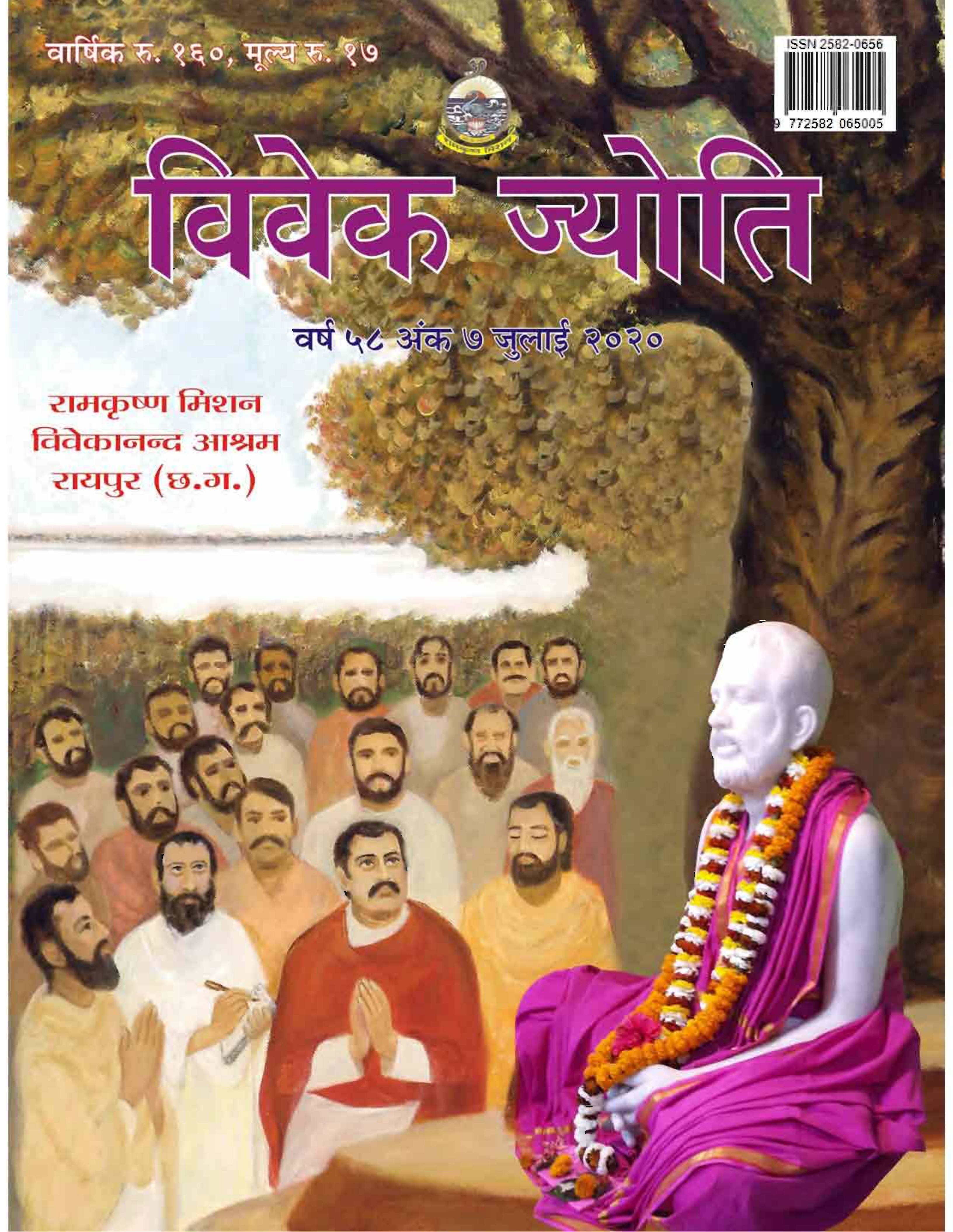

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जुलाई २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक ७

वार्षिक १६०/–   **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. गुरु-स्तुतिः २९३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) २९३
३. सम्पादकीय : अमृतसागर की कुंजी - गुरुदेव के श्रीचरण २९४
४. श्रीरामकृष्ण और चैतन्यदेव : एक रूप तुम भ्राता दोऊ (स्वामी ओजोमयानन्द) २९७
५. (भजन एवं कविता) रामकृष्ण का नाम है अनुपम (अक्षय कुमार सेन), गुरु के प्रसाद राम-नाम गुण गाइए (सन्त सुन्दरदासजी), ईश्वर को पाना ही है लक्ष्य हमारा (सुखदराम पाण्डेय) ३०५
६. प्रश्नोपनिषद् (२) (श्रीशंकराचार्य) ३०६
७. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/२) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ३०७
८. (बच्चों का आंगन) शिक्षा ऐसे ग्रहण करें (स्वामी पद्माक्षानन्द) ३१०
९. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३१) (स्वामी अखण्डानन्द) ३११
१०. (युवा प्रांगण) जेन्टलमैन सोल्जर : कैप्टन विजयन्त थापर (ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य) ३१३
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (९३) (स्वामी सुहितानन्द) ३१५
१२. सांसारिक आशा-आकांक्षा, लोभ-मोह से भगवान नहीं मिलते (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३१७
१३. गगन की थाली, सितारे चाँद सूरज (ए. पी. एन. पंकज) ३१८
१४. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (४३) ३२२
१५. नीतिश्लोकाः (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ३२४
१६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (५५) (स्वामी भूतेशानन्द) ३२५

ISSN 2582-0656

१७. (प्रेरक लघुकथा) ब्रह्मज्ञान गुरु ही दे सकते हैं (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ३२६
१८. गीतातत्त्व-चिन्तन - ७ (नवम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ३२७
१९. भारतीय संस्कृति-धर्म-प्रचारक : स्वामी विवेकानन्द (डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी) ३२९
२०. साधुओं के पावन प्रसंग (१९) (स्वामी चेतनानन्द) ३३१
२१. समाचार और सूचनाएँ ३३४

जुलाई माह के जयन्ती और त्योहार

०५	श्रीगुरु पूर्णिमा
१८	स्वामी रामकृष्णानन्द

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में जगद्गुरु श्रीरामकृष्णदेव को भक्तों को उपदेश देते हुए दर्शाया गया है।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
डॉ. गंगा महेश, विकास नगर, लखनऊ (उ.प्र.)	२१,०००/-
श्री रविन्द्रनाथ वर्मा, मोतीहारी, चम्पारन (ई)	१,५००/-

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६०७. श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुम्बई (महाराष्ट्र)	बाबा राघव दास पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, देवरिया (उ.प्र.)
६०८. ,, ,,	भगत सिंह इन्टर कॉलेज, गोपालगंज (बिहार)
६०९. श्रीमती ज्योत्सना शर्मा, कादम्बरी नगर, दुर्ग (छ.ग.)	महात्मा गाँधी लाइब्रेरी, हेमचंदयादव विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
६१०. श्री आदिनाथ नीरज दापके, नागपुर (महा.)	शारदा देवी महिला महाविद्यालय, कुर्मी पट्टी, देवरिया (उ.प्र.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५८ जुलाई २०२० अंक ७

गुरु-स्तुतिः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

– गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु और गुरु महेश्वर और गुरु ही परम ब्रह्म हैं। इसलिए गुरुदेव को नमस्कार है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुविष्णुर्गुरुर्देवो सदाशिवः।
न गुरोरधिकः कश्चिन्त्रिषु लोकेषु विद्यते।।

– गुरु ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव हैं। त्रिलोक में गुरुदेव से बढ़कर कोई भी नहीं है।

दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परमेश्वरम्।
पूजयेत् परया भक्त्या तस्य-ज्ञान-फलं लभेत्।।

– दिव्य ज्ञान का उपदेश करने वाले, मार्गदर्शक, परमेश्वर स्वरूप गुरुदेव की परा भक्ति से पूजन करनेवाला शिष्य ही ज्ञानफल (ज्ञानरूपी फल) प्राप्त कर सकता है।

पुरखों की थाती

यद् दूरं यद् दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।६८८।।

– जो वस्तु दूर हो, जो वस्तु बड़ी कठिनाई से मिलने वाली हो, जो वस्तु कहीं दूर स्थित हो, वह सब कुछ तपस्या द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि तपस्या के द्वारा कुछ भी असम्भव नहीं है।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवः तस्माद्भावो हि कारणम्।।६८९।।

– परमात्मा न तो काठ में हैं, न पत्थर में और न मिट्टी में। वे तो केवल मन के भाव में रहते हैं। अतः भावना ही मुख्य बात है।

काष्ठ-पाषाण-धातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः।।६९०।।

– यदि कोई काष्ठ, पाषाण या धातु की मूर्ति की भी भाव तथा श्रद्धा के साथ सेवा करे, तो उसे भगवान विष्णु की कृपा से सिद्धि मिल जायगी।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णया परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः।।६९१।।

– शान्ति के समान कोई तपस्या नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से अधिक घातक कोई रोग नहीं है और दया की अपेक्षा उत्तम कोई धर्म नहीं है।

सम्पादकीय

अमृतसागर की कुंजी - गुरुदेव के श्रीचरण

निर्द्वन्द्व, शान्ति, आनन्द समस्त जीवधारियों का ही प्रयोजन है। मनुष्य-जीवन में तो परम सुख-शान्ति, आनन्द और समरसता सर्वत्र अपेक्षित है। क्लेशवृत्ति दुखदायी है। लौकिक समस्त सुख क्षणिक हैं। स्थायी सुख-शान्ति-आनन्द तो जीव को भगवान के पास ही मिलते हैं, भगवद्-अनुभूति में ही मिलती है। मानव-जीवन के परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति की कुंजी सद्गुरुदेव भगवान के पास रहती है। बिना गुरु-चरण सेवा किए, बिना गुरु-कृपा के परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती। अत: भव-दुखमुक्ति और परमात्मपदाभिलाषी व्यक्ति को श्रीगुरुदेव की शरण में जाकर उनकी कृपाप्राप्ति हेतु याचना करनी चाहिए।

लोकप्रसिद्ध है कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं मिलता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्पष्ट कहा है -

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।।

बिना गुरु के ज्ञान नहीं, बिना ज्ञान के वैराग्य नहीं और बिना हरिभक्ति के सुख नहीं मिलता, ऐसा वेद-पुराण गायन करते हैं। विश्वसारतन्त्र ग्रन्थ के गुरु-स्तोत्र में श्रीगुरुदेव का स्तवन इस प्रकार किया गया है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

– गुरु ब्रह्मा, विष्णु और भगवान शिव हैं। गुरुदेव ही परं ब्रह्म हैं। इसलिए हम श्रीगुरुदेव के चरणों में प्रणाम करते हैं।

गुरु को ब्रह्मा कहा गया है। ब्रह्मा सृजन करते हैं, सृष्टि करते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या गुरुदेव भी सृजन करते हैं। हाँ, जिस प्रकार इस संसार की सृष्टि ब्रह्माजी करते हैं, वैसे ही गुरुदेव भी शिष्य का निर्माण करते हैं। ब्रह्माजी ने इस स्थूल जगत की सृष्टि की है। गुरुदेव शिष्य के भाव-शरीर की सृष्टि करते हैं। शिष्य में भगवान के नाम महामंत्र का बीजारोपण कर उसमें भगवद्भाव की सृष्टि करते हैं। उसे भगवान के चरणों से जोड़ देते हैं। गुरु द्वारा प्रदत्त ईश्वर-नाम रूपी महामन्त्र से शिष्य भगवान से, भगवत् सत्ता से सम्पर्क स्थापित करता है। वह भगवान के सान्निध्य-स्रोत से सीधा जुड़ जाता है। ईश्वर-नाम से शिष्य के अन्त:करण में अभिनव भगवद्भाव का सृजन होता है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा का सृजन करता है। मिट्टी को घड़ा बनते समय विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। तब जाकर घड़ा बनता है। उसी प्रकार शिष्य को गुरु के सान्निध्य में साधना की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, तब जाकर शिष्य में उच्चतम भगवद्भाव की सृष्टि होती और उसके हृदय में भगवत् सत्ता का पदार्पण होता है। कहा भी गया है –

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है,गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।।

इस प्रकार गुरुदेव ब्रह्मा हैं।

गुरुदेव विष्णु हैं, कैसे? विष्णु भगवान क्या करते हैं? विष्णु भगवान संसार का भरण-पोषण करते हैं। सृष्ट जीवों का पालन करना विष्णु भगवान का कार्य है। वे जो जैसा है, उसके जीवन-धारण हेतु उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उसे आवश्यक सामग्री प्रदान कर उसके अस्तित्व का, जीवन का रक्षण करते हैं। गुरुदेव भी शिष्य के अन्त:करण में स्व संक्रमित शक्ति की रक्षा करते हैं। शिष्य को प्रदत्त इष्ट-मन्त्र की, उसमें संनिवेशित भगवद्भाव की रक्षा करते हैं, उसे पुष्ट करते हैं। उसकी निष्ठा को सुदृढ़ सबल करते हैं। उस ईश्वरीय भाव की विभिन्न प्रकार के विरोधी विचारों से रक्षा करते हैं। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे – जैसे छोटे पौधे को बचाने के लिये चारों ओर से बेड़ा लगाया जाता है कि कहीं उसे भेड़-बकरी चर न जाय। जब पौधा बड़ा पेड़ हो जाता है, तब उसमें हाथी भी बाँधने से कुछ नहीं होता है। उसी प्रकार गुरुदेव शिष्य के भगवद्भाव की प्रारम्भ में अपनी कृपा, अपने सान्निध्य एवं यथासमय सही मार्गदर्शन देकर विरोधी विचार-शत्रुओं से उसकी रक्षा करते हैं और उसके भाव को

सबल करते हैं। गुरुदेव शिष्य की साधनात्मक प्रक्रियाओं में आनेवाली बाधाओं को दूर करते हैं और उसे परमात्मा के पथ पर अग्रेषित करते हैं।

गुरु महेश्वर, भगवान शिव हैं। कैसे? कहा जाता है कि शिव जगत का संहार करते हैं। जगत की संहारशक्ति का नाम शिव है। क्या संहार से भी शिव होता है, कल्याण होता है? शिव ने किसका संहार किया। जिस जगत की ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं, विष्णु भगवान रक्षा करते हैं, भगवान शिव उसका संहार करते हैं। शिव समाधि में लीन हैं। उन्हें जगत में लाने के लिये अनंग ने दुस्साहस किया। तब शिव ने उसका त्रिनेत्र से संहार कर दिया। जब जगत में पाप-वृद्धि होती है, तब भगवान प्रलय करते हैं। प्रलय के समय सारी सृष्टि का नाश हो जाता है और पुन: नवसृजन होता है।

सद्‌गुरुदेव अपने शिष्य के उन विचारों का, उन इन्द्रिय-शत्रुओं का संहार कर देते हैं, जो उनके द्वारा निर्दिष्ट इष्ट में, परमात्मा में शिष्य को प्रतिष्ठित नहीं होने देते। सद्‌गुरुदेव के सान्निध्य में रहने से शिष्य में स्थित इष्टविरोधी तत्त्वों का नाश हो जाता है और शिष्य की इष्ट-निष्ठा दृढ़ हो जाती है, शिष्य में हृदयस्थ कामादि शत्रुओं का शमन गुरु-निष्ठा, गुरु-सेवा और गुरुवाक्य-विश्वास से हो जाता है। इस प्रकार गुरु संहारमूर्ति शिव हैं।

गुरु ब्रह्मा, विष्णु, शिव के अतीत परं ब्रह्म हैं। गुरु नानकदेव जी ने गुरु की पर ब्रह्म सत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है –

गुरु की मूरति मन महि धियानु।
गुरु के शबदि मन्त्र मनु मानू।।
गुरु के चरन रिदै लै धारउ।
गुरु पारब्रह्म सदा नमस्कारउ।।

जिस प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्म जीव-कल्याणार्थ नररूपधारी ईश्वर के रूप में आविर्भूत होता है। पुन: वही ब्रह्म स्व 'बहु स्याम' की आकांक्षा से चर-अचर में व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार गुरु परं ब्रह्म होते हुए भी शिष्य के कल्याणार्थ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अन्य विभिन्न रूपों को धारण करते हैं और यथासमय शिष्य की रक्षा करते हैं।

नाभादासजी द्वारा प्रणीत भक्तमाल में गुरु-वन्दना करते हुए कहा गया है –

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु नाम भिन्न बपु एक।
तिनके पद वन्दन किए नाशैं बिघ्न अनेक।।

भक्ति, भक्त, भगवान और गुरु नाम भिन्न होते हुए भी इनका शरीर एक है। इनकी पद-वन्दना करने से सभी विघ्नों का नाश हो जाता है।

इस प्रकार गुरु शिष्य के लिए उसका सर्वस्व होते हैं, उसके सब कुछ होते हैं। गुरु से बढ़कर उसके लिए संसार में कोई भी नहीं होता है। योगशिखोपनिषद ने उद्घोषणा की कि गुरु से अधिक त्रिलोक में कोई कुछ भी नहीं है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाशिवः।
न गुरोरधिकः कश्चिन्त्रिषु लोकेषु विद्यते।।

गुरु और परमात्मा में अभेद दृष्टि रखकर गुरु-पूजा का विधान किया गया। योगशिखोपनिषद में कहा गया –

यथा गुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः।।

जैसे गुरु, वैसे ही ईश्वर हैं और जैसे ईश्वर हैं, वैसे ही गुरुदेव हैं। इन दोनों में कोई भेद नहीं है। अत: इस अभेद भाव से दोनों की अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार गुरु-परमेश्वर अभेद हैं।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव कहते थे – ''एक सच्चिदानन्द को छोड़ और कोई गुरु नहीं है। उनके बिना कोई उपाय नहीं है। एकमात्र वे ही भवपार ले जानेवाले हैं।

(श्रीरामकृष्णवचनामृत, भाग २, पृ.७३६)

प्राय: यह प्रश्न उठता रहा है कि ऐसे सद्‌गुरु को कैसे प्राप्त करें? सम्मुख आने पर भी कैसे पहचानें कि यही सद्‌गुरु हैं। प्राचीन काल में भी बड़े-बड़े साधक छली गुरुओं के पाश में फँस गए और अपना सर्वस्व गँवा बैठे।

इसका यथामति सरल समाधान यह प्रतीत होता है –

जो सदा भगवान की बात कहते हों, जिनके पास बैठने से चित्त शान्त हो, मन-शुद्ध हो, धैर्यता-बोध हो, विकारों का नाश हो और भगवद्भक्ति की उद्दीपना हो, भगवत् स्फुरण हो; उन्हें सद्‌गुरु के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। इसी आशय का एक श्लोक गुरुगीता में मिलता है –

यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात् प्रसन्नता।
स्वयं भूयात् धृतिश्शान्तिः स भवेत् परमो गुरुः।।

गुरु के ऐसे दिव्य स्वरूप को ज्ञात कर शिष्य को अपना

सर्वस्व समर्पित कर उनकी सेवा करनी चाहिए। तब वे शिष्य से प्रसन्न होकर उसे आत्मज्ञान प्रदान करते हैं।

दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परमेश्वरम्।

पूजयेत् परया भक्त्या तस्य-ज्ञान-फलं लभेत्।।

शिष्य को गुरुदेव की सेवा अविवेकी के समान करना चाहिए। जैसे कोई मूढ़ व्यक्ति क्या, क्यों, कैसे आदि का तर्क किये बिना यन्त्रवत् अपने स्वामी के निर्देशों का अनुसरण करता है, वैसे ही शिष्य को प्राण-पण से सद्गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

प्राचीन काल में सत्यकाम ने गुरु-आज्ञा से गाएँ चराकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। रामानुजाचार्य के एक शिष्य ने गुरु की गर्भवती प्रसूति पुत्री की सेवा कर भगवद्ज्ञान प्राप्त किया। आरुणि ने अपने शरीर को ही मेड़ बना दिया था। संसार में कई लोग हैं, जो गुरु की सर्वप्रकारेण सेवा कर सुयोग्य एवं ज्ञानाधिकारी बने। कहा जाता है कि जैसे कुदाल से धरती को खोदने पर मानव को जल मिलता है, वैसे ही गुरु की सेवा से शिष्य को विद्या प्राप्त हो जाती है –

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।

ऐसे गुरु को प्राप्त कर भी यदि कोई मुक्ति का प्रयास नहीं करता, तो उसे भगवान श्रीकृष्ण ने आत्महत्यारा कहा है। भगवान श्रीकृष्ण उद्धव को कहते हैं –

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं

प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मयानुकूलेन नभस्वतेरितं

पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

(श्रीमद्भागवत् ११/२०/१७)

– हे उद्धव! नर-शरीर सुदुर्लभ होने पर सुलभ हो गया, इस भव-सागर को पार करने के लिए शरीर रूपी नाव मिल गयी, नौका के कर्णधार श्रीगुरुदेव भी प्राप्त हो गए, अनुकूल वायु हो, मेरी कृपारूपी वायु भी अनुकूल है। इतना होने पर भी यदि कोई संसार-सिन्धु को पार न करे, तो वह आत्महत्यारा है।

इसीलिए सन्तों ने जन-समुदाय को सजग किया, उसका आह्वान किया। कबीर साहब ने अज्ञान-निद्रा में डूबे जीवों का आह्वान किया – **परमातम गुरु निकट विराजै, जागु जागु मन मेरे।** – हे मानवो, परमात्मा गुरु तेरे निकट में विराजमान हैं और तुम सो रहे हो। जागो! जागो!

क्योंकि सन्त जानते हैं कि गुरुकृपा के बिना कुछ भी नहीं होनेवाला है। भगवान की कृपा नहीं होने से भले ही जीव बच जाए, किन्तु गुरु-कृपा के बिना वह रसातल में चला जाता है। सहजोबाई बड़ी स्वाभाविकता से उद्गार व्यक्त करती हैं –

हरि किरपा जो होय तो नाहीं होय तो नाहिं।

पर गुरु किरपा दया बिनु सकल बुद्धि बहि जाहिं।।

सहजो कारज जगत के गुरु बिन पूरे नाहिं।

हरि तो गुरु बिन क्यों मिलै समझ देख मन माहिं।।

– भगवान की कृपा हो या न हो, किन्तु गुरु की कृपा के बिना बुद्धि चली जाती है। सहजोबाई कहती हैं कि थोड़ा विचार करके तो देखो, जब संसार का कार्य गुरु बिना नहीं होता, तो गुरु बिना भगवान कैसे मिलेंगे!

अत: शाश्वत शान्ति, अचल ईश्वर भक्ति, नित्य मुक्ति, और परम आनन्द के इच्छुक मानव को चाहिए कि वह श्रीगुरुदेव की प्राप्ति हेतु परमात्मा से अहर्निश प्रार्थना करे और गुरुदेव की प्राप्ति होने पर वाक्कायमनसा उनके चरणों में समर्पित होकर उनसे कृपा की याचना करे। जब गुरुदेव शिष्य की प्राण-पण सेवा, तीव्र साधना, हार्दिक समर्पण और सत्य तत्त्व जिज्ञासा से प्रसन्न होंगे, तभी तो बताएँगे शान्ति, मुक्ति और आनन्द का मार्ग! ○○○

जो गुरु के बारे में मनुष्य-बुद्धि रखता है उसके साधन-भजन का क्या फल होगा? गुरु के बारे में मनुष्य-बोध नहीं रखना चाहिए। इष्टदर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरुप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं। या अगर शिष्य चाहे तो वह उपास्य-उपासकरूपी भाव-सम्बन्ध को बनाए रखकर द्वैत अवस्था में भी रह सकता है। वह जैसा चाहे गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।

– श्रीरामकृष्णदेव

श्रीरामकृष्ण और चैतन्यदेव : एक रूप तुम भ्राता दोऊ

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

(गतांक का शेष भाग)

असीम भाव – ये दोनों ही अवतार असीम भावों से भावित रहे। श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, 'चैतन्यदेव की जब बाह्य दशा होती थी, तब वे नाम-संकीर्तन करते थे। अर्धबाह्य दशा में भक्तों के साथ नृत्य करते थे। अन्तर्दशा में समाधिस्थ हो जाते थे।[१५]

भगवत्प्रेमी के अन्तर में विरह का भाव हो अथवा मिलन का, परन्तु भगवान के 'आनन्द-चिन्मय' रस के आस्वादन से जिस असीम सुख की उपलब्धि होती है, उसका मर्म हम भला कैसे समझ सकेंगे? तो भी संसार की समस्त सुखराशि उन्हें अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती है, इसलिए विषय-भोग के प्रति उनके मन में बिन्दु मात्र भी आकांक्षा नहीं दीख पड़ती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विरह की अवस्था में और भगवद् अनुभव के समय वह परमानन्द से परिपूर्ण हो जाता है, भले ही विषयी लोगों को बाहर से वह दुखमय प्रतीत हो। चैतन्यदेव अपने अन्तर में जिस आनन्द-राशि का अनुभव कर बाह्य जगत को भूल जाते थे, उसका किंचित् आभास देते हुए उन्होंने दामोदर स्वरूप से कहा था, ''श्रीकृष्ण में ऐसा माधुर्य है कि एक बार भी उसका पता मिल जाने पर पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन उसमें एक साथ ही विलीन हो जाते हैं।

कृष्णरूप शब्द स्पर्श, सौरभ अधर-रस
माधुरी सो कहा नहीं जाय।
देखि लुब्ध पाँच जन, एक अश्व मेरा मन
पाँचों चढ़ि पाँच ओर धाय ।।[१६]

इससे पूर्व हम श्रीचैतन्य देव के मधुरभाव का वर्णन कर चुके हैं। जिसमें वे राधारानी के भाव से श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं। उनके भाव में पुरुष और प्रकृति का मिलन भी दिखायी देता है।

हमें ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि महाप्रभु भक्तों को उनके इष्ट रूप में ही दिखायी देते थे। जैसे जिनके इष्ट राम हैं, उन्हें राम, जिनके कृष्ण हैं, उन्हें कृष्ण, जिनके शिव हैं, उन्हें शिव इत्यादि। श्रीचैतन्य-चरितामृतकार लिखते हैं –

भक्तगने सुख दिते प्रभुर अवतार।
याँहा जैछे योग्य ताहा करेन व्यवहार।।
कभु त लौकिक रीत जेनो इतर जन।
कभु स्वतंत्र –करेन ऐश्वर्य प्रकटन।।
कभु रामचंद्र पुरीर होय भृत्य प्राय।
कभु तारे नाहि माने, देखे तृण प्राय।।
ईश्वर चरित्र प्रभुर बुद्धि अगोचर।
जबे जेई करे सेई सब मनोहर।।[१७]

इसी प्रकार

जार जेनो मत इष्ट प्रभु आपनार।
सेई विश्वम्भर देखे सेई अवतार।। ...
ये मंत्रेते जे वैष्णव इष्ट ध्यान करे।
सेइ मतो देखाय ठाकुर विश्वम्भरे।।[१८]

श्रीचैतन्यदेव की भाँति श्रीरामकृष्णदेव में भी विभिन्न भावों का प्राकट्य मिलता है। हम यहाँ उदाहरणस्वरूप इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

''आध्यात्मिक भाव के प्राबल्य से साधारण जीवों के शरीर तथा मन में उस प्रकार की तो कौन कहे, यदि उसकी चतुर्थांश खलबली भी उत्पन्न हो जाय, तो शरीर उसी समय नष्ट हो जायेगा। ... उस समय से लेकर लगातार छह वर्ष पर्यन्त एक क्षण के लिये भी मुझे नींद नहीं आयी। नेत्र पलकशून्य हो चुके थे, ...। माँ से कहता – 'माँ ... तेरे सिवाय मेरी और कोई भी दूसरी गति नहीं है।' इस प्रकार रोते-रोते मेरा मन पुन: अद्भुत उत्साह से पूर्ण हो उठता था, शरीर अत्यन्त तुच्छ तथा हेय प्रतीत होता था, माँ का दर्शन तथा उनकी अभयवाणी सुनकर मैं आश्वस्त होता था।[१९]

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों का संग्रह है। यदि हम उसका अवलोकन करें, तो पायेंगे कि उन्हें मुहुर्मुहु: भावावेश हुआ करता था। जिस देव-देवी के सम्बन्ध में वे कहते, वे उसी भावराज्य में पहुँच जाते थे। इतना ही नहीं, कहीं पीला रंग देखकर उन्हें पीताम्बर की स्मृति आती और वे श्रीकृष्ण के भावराज्य में पहुँच जाते। तो कभी माँ का नाम लेते ही उन्हें भावावेश हो जाता था। उदाहरण हेतु – 'श्रीरामकृष्ण फिर भावाविष्ट हो गये। भावावेश में ही कह रहे हैं – 'ॐ ॐ ॐ – माँ, मैं क्या कह रहा हूँ। माँ मुझे ब्रह्मज्ञान देकर बेहोश न करना।''[२०] श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंगकार स्वामी सारदानन्द जी लिखते हैं – ''वास्तव में श्रीरामकृष्णदेव के शरीर छोड़ने के दस-बारह वर्ष पहले भी जिन्हें उनके दर्शन का सौभाग्य मिला था, उनके मुँह से भी हमने यह सुना है कि उस समय तक श्रीरामकृष्णदेव का वार्तालाप श्रवण करना उनके लिये प्राय: सम्भव नहीं होता था। चौबीसों घंटे उनकी भाव समाधि लगी रहती थीं।''[२१]

श्रीरामकृष्णदेव ने निरन्तर छह महीने निर्विकल्प भूमि में अवस्थान किया था। उक्त सम्बन्ध में वे कहा करते थे – ''साधारण जीव जिस अवस्था में पहुँचकर पुन: वहाँ से वापस नहीं आ सकता, केवल इक्कीस दिन तक रहने के बाद सूखा पत्ता जिस प्रकार अपने आप पेड़ से झड़ जाता है, उसी प्रकार उसके शरीर की भी दशा होती है – वहाँ मैं छह महीने तक अवस्थित था। ... तदनन्तर उस अवस्था के चले जाने के कुछ दिन बाद माँ की यह वाणी मुझे सुनायी पड़ी – अरे, तू भावमुखी रह, लोक-शिक्षा के लिये तू भावमुखी रह।''[२२]

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में श्रीरामकृष्णदेव के विभिन्न भावों का उल्लेख मिलता है, जैसे – वेदान्त की सप्त भूमियों के अनुभव की बातें, भावावेश में श्रीरामकृष्ण देव को दिखायी देनेवाले विषयों की बाह्य जगत में सत्य प्रमाणित होना तथा अन्त में उन्होंने उपसंहार करते हुए यही कहा है कि भावमय श्रीरामकृष्ण के भावों की इति नहीं है। अत: हम भी इस असीम भावराज्य के अधिपति श्रीरामकृष्णदेव की उक्ति से इस विषय को विराम देंगे, 'वेद-वेदान्तों में जो कुछ लिखा हुआ है, यहाँ की स्थिति (मेरी उपलब्धि) उनसे बहुत आगे बढ़ चुकी है।'[२३]

अवतार – श्रीरामकृष्णदेव एक बार नवद्वीप दर्शन के लिये गये थे तथा वहाँ जाकर उन्हें कुछ अनुभूति हुई, उसका उल्लेख हम उन्हीं के श्रीमुख से करना चाहेंगे – ''मुझे भी उस समय ऐसा संशय होता था, मैं भी यह सोचता था कि पुराण, भागवत आदि में कहीं उनका कोई उल्लेख तक नहीं है, फिर भी चैतन्यदेव को अवतार कहा जाता है। उनके अनुयायियों ने खींच-तानकर उन्हें अवतार बना डाला है। किसी भी तरह यह विश्वास नहीं होता था कि वे अवतार हैं। मथुर के साथ मैं नवद्वीप पहुँचा। ... तदनन्तर लौटने के लिये जब मैं नाव पर सवार हुआ, उसी समय एक अद्भुत दर्शन प्राप्त हुआ। दो सुन्दर बालक – ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा था – तप्तकांचन जैसा वर्ण, किशोरावस्था, मस्तक के चारों ओर एक ज्योतिमण्डल, अपने हाथों को उठाकर मेरी ओर देख हँसते हुए आकाश-मार्ग से दौड़े चले आ रहे हैं। तत्काल ही 'वह देखो, आ रहे हैं, आ रहे हैं, कहकर मैं चिल्ला उठा। मेरे यह कहते ही वे दोनों मेरे समीप आकर (अपने शरीर को दिखाते हुए) इसके अन्दर प्रविष्ट हो गये और मैं बाह्य चेतनारहित हो गिर पड़ा। जल में ही मैं गिर जाता, हृदय मेरे निकट था, उसने मुझे पकड़ लिया। इसी तरह बहुत कुछ दिखाकर उन्होंने मुझे यह समझा दिया कि वास्तव में ही वे अवतार हैं, उनके भीतर ईश्वरीय शक्ति

का विकास है।''[२४] इस घटना को सुनकर भैरवी ब्राह्मणी ने कहा था – ''इस समय नित्यानन्द के आवरण में चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ है।[२५] इससे पूर्व ही हम कह चुके हैं कि श्रीरामकृष्णदेव को जब भी किसी देव-देवी का दर्शन मिलता, वे मूर्तियाँ उनके भीतर समाहित हो जाया करती थीं। इस प्रकार श्रीचैतन्यदेव भी अवतार थे तथा मानव शक्ति से कहीं अधिक आध्यात्मिक भावों के उपरोक्त विभिन्न प्रमाणों से हम श्रीरामकृष्णदेव को भी अवतार स्वीकार करने को बाध्य होते हैं। इन दोनों ही अवतारों के अवतार होने के विभिन्न अकाट्य प्रमाण उपलब्ध होने पर भी हम इस विषय की बृहदता को देखते हुए उन सबका उल्लेख नहीं कर रहे हैं। अत: चैतन्य भागवत का उल्लेख कर हम अवतार विषय की समानता की इति करेंगे।

अद्वैतेर गला धरि कहेन बार बार।
पुनः जे करिबो लीला मोर चमत्कार,
कीर्तने आनन्दरूप हइबे आमार।।
अद्यावधि गौरलीला करेन गौर राय।
कोनो कोनो भाग्यवाने देखिबारे पाय।।[२६]

अर्थात् श्रीअद्वैत प्रभु के गले में हाथ डालकर श्रीचैतन्य महाप्रभु बारम्बार यह कहने लगे कि मैं पुन: जो अद्भुत लीला करूँगा, उसमें श्रीहरि-कीर्तन में मेरा आनन्दमय रूप होगा। अब भी श्रीगौरांगदेव अपनी लीलाएँ करते हैं, किसी-किसी भाग्यवान को उन लीलाओं का दर्शन मिलता है।

कीर्तन – इन दोनों ही अवतारों में कीर्तन-प्रेम और उसके भावों में अत्यन्त समानता पायी जाती है। उपरोक्त पद्य में महाप्रभु अपने अगले अवतार के विषय में संकेत करते हुए 'कीर्तन आनन्दरूप' का उल्लेख करते हैं। इसमें भी हम उनकी श्रीरामकृष्णदेव से समानता को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

श्रीचैतन्यदेव के कीर्तन-विषय में उल्लेख मिलता है –''भावावेश के समय निमाई कहीं भूमि पर न गिर पड़ें, अत: संकीर्तन के समय निताई उनके पीछे खड़े रहकर सावधानीपूर्वक दोनों हाथ बढ़ाये रहते थे। ... निमाई प्रतिदिन रात को भक्तों के साथ मिलकर भगवच्चर्चा तथा भजन-कीर्तन में काफी काल बिताया करते थे। कहीं बहिर्मुखी लोग आकर इस भक्त सभा के भाव में व्यवधान न डालें, इसलिए वे लोग सावधानीपूर्वक बाहर के लोगों को उस सभा में प्रवेश नहीं करने देते थे। श्रीवासाचार्य के घर में अतीव निर्जनता देखकर कुछ काल बाद निमाई ने भजन के लिए वही स्थान सुनिश्चित किया और हर रात अन्तरंग भक्तों के संग श्रीवास के आँगन में जाकर भजन-कीर्तन की माधुरी का उपभोग करने लगे। इसी प्रकार प्राय: पूरे वर्ष भर प्रतिदिन रात को श्रीवास के घर भक्त-मिलन और भजन-कीर्तन हुआ था। इस स्थान पर भक्तों के संग संकीर्तन करते समय निमाई की देह में कितने विचित्र भावों का विकास हुआ था, इसका कोई हिसाब नहीं। विस्मय-विमुग्ध भक्तगण उन अलौकिक दृश्यों का अवलोकन कर अपना जीवन धन्य मानते। कभी-कभी निमाई भाव में बाह्य संज्ञा खो बैठते और उस समय उनका मुखमण्डल एक दिव्य प्रभा से उद्भासित हो उठता, जिसे निरखकर भक्तगण अपना नयन-मन सार्थक कर लेते। ... निमाई अब और अपने भक्तों के बीच छिपे न रह सके। वे लोगों के साथ जितना मिलते-जुलते, उतना ही उन्हें उन लोगों के त्रिविध ताप का पता चलता। ... वे अब उसकी व्यथा को शान्त करने हेतु भगवत्कथा सुनाने के लिए आकुल हो उठे। इसके फलस्वरूप अब सार्वजनिक रूप से सबके साथ मिलकर भजन-कीर्तन होने लगा।''[२७]

श्रीरामकृष्णवचनामृत तथा श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग में श्रीरामकृष्ण के असंख्य कीर्तनों का उल्लेख मिलता है, उनमें से हम कुछ का उल्लेख कर रहे हैं।

'बलराम बाबू के निवास पर रथयात्रा उत्सव में श्रीरामकृष्णदेव स्वयं रथ की रस्सी पकड़कर थोड़ी देर तक उसे खींचते रहे। तदनन्तर भावाविष्ट हो ताल के साथ-ही-साथ सुन्दर रूप से नृत्य करने लगे। उनके भावोन्मत्त हुंकार तथा नृत्य से मुग्ध हो उस समय सब लोग आत्मविस्मृत हो भगवद्भक्ति में उन्मत्त हो गये।'[२८]

मणिबाबू के निवास पर – ...''श्रीरामकृष्णदेव उन्मत्त भक्तों के उस दल के बीच नृत्य करते हुए ताल के साथ कभी जल्दी-जल्दी आगे बढ़ते और कभी उसी तरह पीछे हटते आ रहे हैं और रीति से जब वे जिधर जाते उधर के लोग मन्त्रमुग्ध हो उनके अनायास गमनागमन के लिए स्थान छोड़ते जा रहे हैं। उनके हास्यपूर्ण श्रीमुख पर अदृष्टपूर्व दिव्य ज्योति खिल उठी है। प्रत्येक अंग में अपूर्व कोमलता और माधुर्य के साथ सिंह के समान बल का आविर्भाव हुआ है। वह एक अपूर्व नृत्य था, उसमें आडम्बर नहीं, उछल-कूद नहीं, कष्टसाध्य अस्वाभाविक अंगविकृति या अंगसंयम-राहित्य भी नहीं था। ... जिस प्रकार मछलियाँ कभी धीर

भाव से और कभी द्रुत गति से तैरकर चारों ओर दौड़ती हुई आनन्द प्रकट करती हैं, श्रीरामकृष्ण देव का अपूर्व नृत्य भी ठीक वैसा ही था।''[२९]

जयगोपाल सेन के मकान पर – ''उस दिन श्रीरामकृष्णदेव ने बहुत ही मधुर भाव से नृत्य किया था।''[३०]

पानिहाटी महोत्सव में – 'श्रीरामकृष्णदेव कभी अर्धबाह्यदशा प्राप्त कर सिंह विक्रम-से नृत्य करने लगे और कभी बाह्य ज्ञान खोकर स्थिर भाव से अवस्थान करने लगे। ... स्त्री-पुरुषों के हावभावमय मनमोहक नृत्य हमने अनेक देखें हैं, किन्तु दिव्य-भाव के आवेश से अपने को भूलकर ताण्डव नृत्य करते समय श्रीरामकृष्ण देव के शरीर में जिस प्रकार रुद्र-मधुर सौन्दर्य खिल उठता है, उसकी आंशिक छाया भी हमें अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिली।[३१]

स्पर्श शक्ति – इन दोनों ही अवतारों में स्पर्श के माध्यम से भाव-परिवर्तन का उल्लेख मिलता है।

उस समय बंगाल के नवाब हुसेनशाह थे। उनकी ओर से फौजदार चाँद खाँ नाम के काजी नवद्वीप में नियुक्त थे। उन दिनों काजी ने संकीर्तन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तब श्रीचैतन्यदेव ने नित्यानन्द से कहा था कि हम पूरे नवद्वीप में घूम-घूमकर संकीर्तन करेंगे, यह भक्तों को सूचित कर दिया जाय। इस प्रकार घूमते-घूमते संकीतर्न करते हुए कीर्तन मण्डली काजी के घर के सामने आ पहुँची। काजी भय से घर में छिपा बैठा था, क्योंकि लोगों की संख्या बहुत अधिक थी तथा उसके सिपाहियों ने भी साथ देने से मना कर दिया था। ऐसी स्थिति में श्रीचैतन्य देव ने उन्हें विनम्रतापूर्वक बाहर आने को कहा तथा आश्वस्त किया कि कोई उन्हें क्षति नहीं पहुँचायेगा। उनकी विनम्रतापूर्वक बातों से काजी भी विनम्र हो गया और प्रभु ने उसका आलिंगन किया। 'प्रभु का प्रेमालिंगन पाकर काजी का रोम-रोम खिल उठा। उसे अपने शरीर में एक प्रकार के नवजीवन का संचार होता हुआ दिखायी देने लगा। वह अपने में अधिकाधिक स्निग्धता, कोमलता और पवित्रता का अनुभव करने लगा।[३२] इस प्रकार अन्त में काजी ने संकीर्तन का विरोध करना बंद कर दिया। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी हरि बोल की उच्च ध्वनि करने लगा।

इसी प्रकार भावाविष्ट हो किसी के कंधे पर चैतन्यदेव के आरूढ़ होते ही उसके भीतर के संशय, अविश्वास आदि पाखण्डमय भावसमूह विगलित हो गये थे और वह भक्त बन गया था आदि अनेक घटनाएँ कई प्रामाणिक ग्रंथों में पायी जाती हैं।

लीलाप्रसंगकार लिखते हैं – ''कितनी ही बार हमने अपनी आँखों के सामने देखा है कि अति द्वेषी व्यक्ति अपना द्वेष प्रकट करने के लिए श्रीरामकृष्णदेव के सम्मुख उपस्थित हुआ है तथा इस शक्ति के प्रभाव से आत्मविभोर हो भावावेश में श्रीरामकृष्ण देव ने उसका स्पर्श किया है और उसी क्षण से उसके भीतर के स्वभाव में आमूल परिवर्तन हो गया है, जिसके फलस्वरूप नवीन जीवन प्राप्त कर वह धन्य हो गया है।'[३३]

''१ जनवरी, १८८६ ई. को कलकत्ते के काशीपुर नामक स्थान पर एक अद्‌भुत घटना घटी थी। अस्वस्थता के कारण श्रीरामकृष्णदेव नीचे नहीं आते थे। पर उस दिन वे नीचे उतरे थे तथा टहलते हुए सड़क के किनारे स्थित आम के वृक्ष के नीचे खड़े होकर श्रीयुत राम तथा श्रीयुत गिरीशचन्द्र को देखा तथा गिरीशचन्द्र से संक्षिप्त वार्तालाप करते हुए समाधिस्थ हो गए। तब गिरीशचन्द्र बार-बार 'जय रामकृष्ण' 'जय रामकृष्ण' कहने लगे। इसी बीच में अर्धबाह्य दशा को प्राप्त कर उपस्थित लोगों की ओर देखते हुए मृदु हास्य के साथ श्रीरामकृष्णदेव बोले ''तुम लोगों से और क्या कहूँ, तुम सबको चैतन्य प्राप्त हो!''[३३]...

भक्तवृन्द उनका चरण स्पर्श करने लगे। चरणस्पर्श कर पहला व्यक्ति ज्योंही खड़ा हुआ, त्योंही श्रीरामकृष्णदेव

काशीपुर उद्यानभवन में कल्पतरु श्रीरामकृष्णदेव

उसी अर्धबाह्य दशा में उसका वक्षस्थल स्पर्श कर नीचे से ऊपर की ओर हाथ फेरकर बोले, "तुझे चैतन्य प्राप्त हो।" ...समुपस्थित भक्तों में से सभी का क्रमश: वे इस प्रकार स्पर्श करने लगे और इस अद्भुत स्पर्श के प्रभाव से प्रत्येक के भीतर भावान्तर उपस्थित होने के कारण कोई हँसने, कोई रोने तथा कोई ध्यान करने लगा और कोई स्वयं आनन्द विह्वल होकर अहैतुक दयानिधि श्रीरामकृष्णदेव की कृपा प्राप्त कर धन्य होने के निमित्त दूसरे लोगों को जोर-जोर से पुकारने लगा।'[३४]

दर्शन – इन दोनों ही अवतारों के जीवन में उनके ईश्वरीय रूप के दर्शनों का उल्लेख मिलता है।

'षडभुज होये देखा दिला मालिनीरे।'[३५]

चैतन्य भागवतानुसार गुरुपूर्णिमा के दिन श्रीवास के गृह में व्यासदेव की पूजा का आयोजन था। "प्रभु ने कहा, 'नित्यानन्द इस माला से शीघ्र व्यासदेव का पूजन करो।' नित्यानन्द ने देखा कि वे ही तो प्रभु विश्वम्भर हैं, अत: माला उठाकर उन्हीं के सिर पर चढ़ा दी। उनके बिखरे बालों के बीच माला बड़ी शोभायमान हुई और विश्वम्भर ने तत्काल षड्भुजरूप धारण कर लिया। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल और मूसल देखकर विस्मित निताई भावविह्वल हो उठे और संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।"[३६]

पंचवटी में भैरवी ब्राह्मणी को श्रीरामकृष्णदेव का अपूर्व दर्शन कुछ इस प्रकार लिखित है – "रसोई बन जाने के बाद श्रीरघुवीर के सम्मुख उन सामग्रियों को रखकर ब्राह्मणी ने भोग लगाया तथा अपने इष्टदेव का चिन्तन करती हुई गहरे ध्यान में निमग्न हो अभूतपूर्व दर्शन प्राप्त कर वे समाधिमग्न हो गयीं। ... उसी समय इधर श्रीरामकृष्णदेव आकृष्ट होकर अर्धबाह्य दशा में सहसा वहाँ उपस्थित हुए तथा दैवी शक्तिवश पूर्णाविष्ट हो ब्राह्मणी द्वारा निवेदित उन खाद्य वस्तुओं का भोग लगाने लगे। तदनन्तर चेतना प्राप्त करने के पश्चात् ब्राह्मणी की जब आँखें खुलीं तब बाह्य ज्ञानरहित भावाविष्ट श्रीरामकृष्ण देव के इस प्रकार के आचरण के साथ अपने दर्शन का सादृश्य देखकर वे रोमांचित हो उठीं। ... ध्यान में निमग्न होकर मैंने जो देखा है, उससे मुझे यह निश्चय हुआ है कि किसने ऐसा किया है और इसका कारण क्या है, मैं यह भी जान गयी हूँ कि अब मेरे लिये पहले की तरह बाह्य पूजन की आवश्यकता नहीं है। इतने दिनों के बाद मेरा पूजन सार्थक हुआ है।"[३७] इस घटना के पश्चात् ही भैरवी के मन में श्रीरामकृष्णदेव के अवतार होने की बात उदित हुई थी। एक और घटना का उल्लेख करना हम आवश्यक समझते हैं, जिससे उनके दर्शन का तथ्य स्पष्ट हो जाये। एक दिन श्रीरामकृष्णदेव बरामदे में टहल रहे थे। पास के एक मकान के कमरे में मथुर बाबू अकेले बैठे हुए थे, जिसका श्रीरामकृष्णदेव को भान न था। अचानक वे दौड़ते हुए आये और श्रीरामकृष्णदेव के दोनों चरण पकड़कर रोने लगे। तब उसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा – "... आप टहलते हुए जिस समय इस ओर आते, तब ऐसा दिखता कि आप नहीं हैं, वरन साक्षात् जगदम्बा ही सामने आ रही हैं। जब आप पीछे मुड़कर उस ओर जाने लगते, तब आप साक्षात् महादेव ही दिखते थे! मुझे पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि यह मेरी आँखों का भ्रम है। अच्छी तरह से आँखें मींजकर फिर इस तरह मैंने जितनी बार देखा, ठीक वही दर्शन हुआ।"[३८]

अब तक हमने श्रीरामकृष्णदेव और श्रीचैतन्यदेव की समानता की चर्चा इसकी प्रथम उद्घोषिका भैरवी ब्राह्मणी के दिए संकेतों के आधार पर की है। इसके अलावा भी इन दोनों के अनेक सादृश्य हैं, जिनका हम संक्षेप में वर्णन करेंगे।

अद्भुत स्मृति शक्ति – इन दोनों ही महापुरुषों की अद्भुत स्मृति थी! वे एक बार जो सुन लेते, उसे वैसा ही याद रख सकते थे। श्रीचैतन्यदेव के विषय में कहते हैं –

देखिया अद्भुत बुद्धि गुरु हरषित।
सर्व-शिष्य-श्रेष्ठ करिला पूजित।।[३९]

तथा श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में उल्लिखित है –

बाल्याबधि श्रुतिधर छिलेन एमन।
बादेक शुनिले कभु नॉहे बिस्मरण।।[४०]

(बचपन से ऐसी अद्भुत स्मृति थी कि एक बार सुन लेने पर वे फिर नहीं भूलते थे।)

शक्ति उपासना – लोगों की ऐसी भ्रान्त धारणा है कि जो वैष्णव मत के अनुयायी होते हैं, वे शाक्त या शक्ति उपासना के समर्थक नहीं होते, परन्तु शक्ति को प्रसन्न करके ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है तथा काली और कृष्ण अभेद हैं, यह उनके जीवन व उपदेश में देखा जा सकता है। स्वयं श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था – "शक्ति की आराधना चैतन्य ने भी किया था।"[४१] और जैसा कि सर्वविदित है,

श्रीरामकृष्णदेव ने माँ जगदम्बा को अपना इष्ट स्वीकार किया था तथा उनकी ही आज्ञा से उन्होंने अन्य साधनाएँ की थीं। इतना ही नहीं, वे अपने प्रत्येक कार्य के लिए माँ की अनुमति या आदेश प्राप्त कर ही उस कार्य में अग्रसर होते थे। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन ही शक्ति की उपासना थी।

शिव भक्ति – अनेक लोगों की यह धारणा होती है कि वैष्णव, शिव को नहीं पूजते, परन्तु श्रीचैतन्य देव और श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में उनके बीच भेद का कोई तथ्य नहीं मिलता है। श्रीचैतन्य देव जब तीर्थ के लिये निकले, तब वे विभिन्न शिव मंदिरों में पूजा-अर्चना और दर्शन के लिये गये थे। श्रीचैतन्य देव की शिवभक्ति का उल्लेख कुछ इस प्रकार है – "वे सुप्रसिद्ध तीर्थ मल्लिकार्जुन पहुँचे, जो द्वादश ज्योतिर्लिगों में एक है। शिव का दर्शन करके उनके मन में अतीव आनन्द का संचार हुआ। ... शिवकांची में उन्होंने **(एकामग्रनाथ)** महादेव और वहाँ की पीठाधिष्ठात्री कामाक्षी देवी का दर्शन किया। ... गौरांग-सुंदर ने (कुम्भकोणम् में) कुम्भकर्ण के मस्तक का सरोवर और शिवक्षेत्र में शिव को देखने के बाद विष्णु का दर्शन कर पापनाश करने को श्रीरंग क्षेत्र की यात्रा की।"[४२]

इसी प्रकार महाप्रभु के श्रीशैल, सुप्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर, रामेश्वरम् तथा काशी के विश्वेश्वर के दर्शन-पूजन का भी उल्लेख मिलता है।

मथुर बाबू ने श्रीरामकृष्ण देव को दक्षिणेश्वर में शिव की मूर्ति बनाकर पूजा करते हुए देखा था। कामारपुकुर में शिव सजकर नाटक करते हुए वे समाधिस्थ हो गये थे। एक बार 'महिम्न:स्तोत्र' स्तुति करते हुए अपूर्व भाव से आविष्ट हो वे एकदम आत्मविह्वल हो उठे। "इस श्लोक का पाठ करते हुए श्रीरामकृष्णदेव अपने हृदय में शिव-महिमा का ज्वलन्त अनुभव कर एकदम विह्वल हो आगे के श्लोकों की आवृत्ति करना एकदम भूलकर चिल्लाते हुए बारम्बार केवल यही कहने लगे, 'हे महादेव, तुम्हारे गुणों का मैं कैसे वर्णन करूँ।"[४३]

श्रीरामकृष्णदेव ने काशी की यात्रा की थी, जहाँ उन्होंने मणिकर्णिका घाट पर विश्वेश्वर को जीवों को मुक्त करते हुए देखा था। स्वामी अखण्डानन्द जी की स्मृतिकथा में हम यह भी पाते हैं कि श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें जीवन्त शिव का दर्शन करवाया था।

रामभक्ति – अनेक लोगों की ऐसी भ्रान्त धारणा है कि दशनामी संन्यासी शिव-भक्त और विष्णुद्वेषी होते हैं। इन दोनों ही अवतारों के जीवन में रामभक्ति के विशेष प्रमाण उपलब्ध हैं।

श्रीचैतन्यदेव के कुल देवता रघुनाथ थे। अत: बाल्यकाल से उन्होंने उनकी पूजा और सेवा की थी। कीर्तन में भी वे गाया करते थे –

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।

अपने दक्षिण भारत-भ्रमण के समय उन्होंने सिद्धवट में स्थित श्रीरामचन्द्र के दर्शन किये थे और एक राम-भक्त ब्राह्मण के घर ठहरे थे। रामेश्वरम् में जाकर वे राम-कथा सुनते थे और राम के लीला-स्थलों का दर्शन करते थे।

'रामाष्टक' के रचयिता श्री मुरारि गुप्त श्रीचैतन्य के अन्तरंग में से थे, जिन्हें श्रीचैतन्यदेव ने 'राम का दास' रहने का आशीर्वाद दिया था।

श्रीरामकृष्णदेव के गृह में रघुवीरजी की पूजा पहले से ही चली आ रही थी। उनके पिता ने इस तरह अपने सभी पुत्रों का नाम 'राम' शब्द से ही रखा था। इस प्रकार बचपन से ही उन्हें राम-भक्ति का अवसर मिला था। 'भावावस्था में श्रीजगन्माता के दर्शन करने के पाश्चात् अपने कुलदेवता श्रीरघुवीर की ओर उनका चित्त आकृष्ट हुआ था। यह समझकर कि हनुमानजी की भाँति अनन्य भक्ति के द्वारा ही श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन सम्भव है, दास्य भक्ति में सिद्ध होने के निमित्त वे उस समय अपने में महावीरजी के भाव का आरोप कर कुछ दिन के लिये साधना में प्रवृत्त हुए थे। ... वे (श्रीरामकृष्णदेव) कहते थे, "... उछल-कूदकर चलता था, फल-मूलादि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं खाता था ...गम्भीर स्वर से 'रघुवीर, रघुवीर' कहकर निरन्तर मैं उनको पुकारता रहता था। ... उसी समय एक अनुपम ज्योतिर्मयी स्त्री-मूर्ति मेरे समीप आविर्भूत हुई ... यह देखकर मेरा मन भीतर से कहा उठा, 'सीता, जन्मदु:खिनी सीता, जनक राजनन्दिनी सीता, राममयजीविता सीता!"[४४]

इस प्रकार उनकी रामभक्ति वात्सल्य-भाव में देखने को मिलता है, जिसका उल्लेख हम अगले प्रसंग में दे रहे हैं।

वात्सल्य भाव – इन दोनों ही महापुरुषों में वात्सल्य भाव का अद्भुत प्रकाश दिखाई देता है। 'संन्यासोपरान्त

श्रीचैतन्यदेव पुरी गये थे। उस क्षेत्र में प्रवेश करते ही दूर से मन्दिर को देखकर उन्हें बालगोपाल मूर्ति का दर्शन हुआ था तथा यह देखकर वे प्रेमोन्माद में गाने लगे थे –

प्रासादाग्रे निवसति पुरः स्मेरवक्त्रारविन्दो।
मामालोक्य स्मितसुवदनो बालगोपालमूर्तिः।।
प्रभु बोले - **देख प्रासादेर अग्रमूले।**
हासेन आमारे देखि श्रीबालगोपाले।।[४५]

"जटाधारी के आगमन के समय श्रीरामकृष्णदेव अपने हृद्गत भाव की प्रेरणा से बहुधा अपने को स्त्रीजनोचित देह-मन-संपन्न रूप से धारणा कर तदनुरूप कार्यों का अनुष्ठान करते थे तथा श्रीरामचन्द्रजी के सुमधुर बाल्यरूप के दर्शन प्राप्त होने के कारण श्रीरामकृष्णदेव के भीतर उनके प्रति वात्सल्य भाव का उदय हुआ था। ... राममन्त्र – श्रीरामचन्द्रजी की बालमूर्ति के मन्त्र में सिद्धकाम जटाधारी को जब यह बात विदित हुई, तब उन्होंने सानन्द उनको अपने इष्ट-मंत्र में दीक्षित किया एवं श्रीरामकृष्णदेव उस मंत्र की सहायता से उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन कर साधना में निमग्न हो कुछ ही दिन के भीतर निरन्तर श्रीरामचन्द्रजी की बालमूर्ति का दिव्य दर्शन प्राप्त करने में समर्थ हुए।"[४६]

विवाह और संन्यास – अवतार पुरुष जब भी अवतरित होते हैं, तब वे किसी एक जाति, सम्प्रदाय, लिंग या राष्ट्र के लिये ही नहीं आते हैं, मात्र गृहस्थ या मात्र संन्यासियों के लिये ही नहीं आते हैं, उनका उद्देश्य सदैव सभी पक्षों के लिये ही होता है। इन दोनों ही अवतारों में हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि इन लोगों ने एक आदर्श गृहस्थ और आदर्श संन्यासी दोनों के रूप में उदाहरण प्रस्तुत किया है।

श्रीचैतन्यदेव ने विष्णुप्रिया से विवाहोपरान्त ईश्वर-दर्शन की व्याकुलता से साधना प्रारम्भ की। हरिनाम-संकीर्तन में उनके दिन व्यतीत हो रहे थे कि कुछ शत्रुओं ने उन्हें चालाक की संज्ञा दे डाली कि वे लोगों को ठग रहे हैं, घर में धन-दौलत का अभाव नहीं और सुन्दर युवा स्त्री है आदि आदि। तब निमाई ने सोच-विचार कर संन्यास लेने का निर्णय लिया। "रघुनाथ के मन्दिर के द्वार के सम्मुख निमाई ने दण्डवत् प्रणाम किया और संन्यास की अनुमति तथा आशीर्वाद के लिए याचना की। तदुपरान्त अपनी वृद्धा माता तथा युवा पत्नी की रक्षा का भार उनके पादपद्मों में सौंपकर अपने अपराधों के लिये क्षमा माँगते हुए उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ हाथ जोड़े मन्दिर की प्रदक्षिणा की। ... जाड़े के दिन थे, तथापि बेहिचक वे तैरकर गंगा पार हुए और गीले वस्त्र में ही दौड़ते हुए सुबह तक कटवा में श्रीमत् स्वामी केशव भारतीजी महाराज के आश्रम में जा पहुँचे। ... भारती महाराज के निर्देशानुसार शास्त्रविधि के अनुसार समस्त क्रिया सुसम्पन्न हो जाने के पश्चात् विरजा-होम प्रारम्भ हुआ। ... 'श्रीकृष्णचैतन्य भारती' नाम से विभूषित किया।

"... गुरुदेव के मुख से महावाक्य श्रवण करने के पश्चात् मनन तथा निदिध्यासन करते ही श्रीकृष्ण-चैतन्य को समाधि लग गयी। .. क्रमशः मन के और भी नीचे उतर आने पर स्थूल जगत का बोध होते ही निमाई बाह्य दशा को प्राप्त होकर श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल होकर क्रंदन करने लगे। रोते-रोते उनका मन श्रीकृष्ण में तन्मय हो जाने से, वे पुनः समाधि में लीन हो गये और उनकी अन्तर्बाह्य अवस्था हो गयी। इस प्रकार वे कभी अन्तर्दशा (निर्विकल्प समाधि), कभी अर्धबाह्यदशा (भाव-समाधि) और बीच-बीच में बाह्यदशा (स्थूल जगत के ज्ञान) में अवस्थान करने लगे।"[४७]

श्रीरामकृष्णदेव का विवाह श्रीसारदादेवी से हुआ था। तथापि श्रीजगन्माता के आदेश से वे संन्यास के लिए प्रवृत्त हुए थे। उनकी माता जीवित हैं और उन्हें जानकर कष्ट न हो, इसलिये उन्होंने गुप्त संन्यास लेने की इच्छा तोतापुरीजी से की थी तथा तोतापुरीजी ने भी उसका अनुमोदन किया था। श्राद्ध आदि क्रिया सम्पन्न कर विरजा होम के पश्चात् सिद्धान्त वाक्यों का समय आया। उसके विषय में श्रीरामकृष्णदेव स्वयं कहते हैं – "दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् न्यांगटा (तोतापुरीजी) नाना प्रकार के सिद्धान्त वाक्यों का उपदेश देने लगा तथा उसने मन को सब प्रकार से निर्विकल्प कर आत्मचिन्तन में निमग्न हो जाने को कहा। किन्तु ...मैं

अपने मन को निर्विकल्प न कर सका। ...न्यांगटा अत्यन्त उत्तेजित होकर तीव्र तिरस्कार करता हुआ बोला, 'क्यों नहीं होगा?' ... एक काँच के टुकड़े पर दृष्टि पड़ते ही उसने उसे उठा लिया तथा सुई की तरह उसके तीक्ष्ण अग्रभाग को मेरी भौहों के बीच में बलपूर्वक गड़ाकर बोला, 'इस बिन्दु में अपने मन को समेट लो।' तब पुन: दृढ़ संकल्प हो मैं ध्यान करने बैठा तथा श्रीजगदम्बा की मूर्ति पहले की भाँति मन में उदित होते ही ज्ञान को खड्ग के रूप में कल्पना कर उसके द्वारा इस मूर्ति को मैंने मन-ही-मन दो टुकड़े कर डाला, फिर मेरे मन में और कोई विकल्प न रहा, तीव्र गति से मेरा मन समग्र नाम-रूप-राज्य के परे चला गया और मैं समाधि में निमग्न हो गया।''[४८]

वे एक जैसे हैं या एक ही हैं?

एक दिन श्रीरामकृष्णदेव अपने भांजे हृदय के साथ कोलूटोला की हरिसभा में उपस्थित हुए। उस समय श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। श्रीरामकृष्णदेव भी श्रोताओं के बीच बैठकर कथा सुनने लगे। कथावाचक के समीप ही 'महाप्रभु चैतन्य का आसन' था, मानो कथावाचक महाप्रभु को कथा सुना रहे हों। 'श्रीमद्भागवत की अमृतमयी कथा को सुनते हुए श्रीरामकृष्णदेव आत्मविह्वल हो उठे तथा 'महाप्रभु चैतन्य के आसन' की ओर सहसा दौड़कर उस पर खड़े हो गये और ऐसी गहरी समाधि में डूब गये कि उनके भीतर प्राणस्पन्दन का कोई भी चिह्न दिखायी नहीं दिया।'[४९] यह सब देख कथावाचक कथा कहना भूल गये तथा श्रोतागण स्तम्भित हो चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर उस अव्यक्त भाव से प्रेरित सब हरिनाम करने लगे। नाम-श्रवण के कारण श्रीरामकृष्ण को कुछ होश आने पर वे कीर्तन के साथ मधुर नृत्य करने लगे। उस नृत्य और भावों को देखकर सबका मन मुग्ध हो गया। परन्तु धीर-धीरे यह सामाचार वैष्णवों में शीघ्र ही फैल गया था। उस समय के बाबा भगवानदासजी को यह जानकर असंतोष हुआ था। इस घटना के पश्चात् किसी एक दिन श्रीरामकृष्णदेव बाबाजी के आश्रम जा पहुँचे। बाबाजी को इसकी कोई सूचना नहीं थी, पर उन्होंने आश्रमवासियों से कहा था कि यहाँ किसी महापुरुष का आगमन हुआ है। अगले घटनाक्रम में बाबाजी का वार्तालाप श्रीरामकृष्णदेव से होता है तथा बाबाजी का अहंकार चूर्ण होता है। श्रीरामकृष्णदेव के अपूर्व भावावेश को देखकर उन्होंने यह अनुभव किया कि वे साधारण पुरुष नहीं हैं।

तत्पश्चात् उन्हें यह ज्ञात होता है कि श्रीरामकृष्णदेव ही उस दिन 'महाप्रभु के आसन' पर आरूढ़ हुए थे। वास्तव में जो श्रीरामकृष्णदेव हैं, वे ही श्रीचैतन्यदेव भी हैं, अत: अब हम यह कहने में असमर्थ हैं कि श्रीरामकृष्णदेव और श्रीचैतन्यदेव एक जैसे हैं, बल्कि वे भिन्न रूपों में एक ही हैं।

श्रीचैतन्यदेव ने सार्वभौम को षड्भुज रूप दर्शन कराये थे। इस प्रकार वे ही राम थे और वे ही कृष्ण थे, इसे उन्होंने प्रमाणित कर दिया। ठीक, इसी प्रकार नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) के अनेकों परीक्षा लेने तथा उसमें उत्तीर्ण होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव अवतार हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में उन्हें सन्देह होता है, तब श्रीरामकृष्णदेव पुन: उनका संशय दूर करते हुए कहते हैं, 'जो राम, जो कृष्ण, वे ही इस बार इसी शरीर में रामकृष्ण हुए हैं, पर हाँ, तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।'[५०] इस प्रकार हम इनकी समानता को अभेदत्व में स्वीकार करते हैं, क्योंकि श्रीचैतन्यदेव के समस्त भाव श्रीरामकृष्णदेव में देखने को मिलते हैं। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ सूत्र – १५. श्रीरामकृष्णवचनामृत, खं २, पृ.२९, **१६.** श्रीचैतन्यमहाप्रभु (स्वामी सारदेशानन्द) पृ. ३४१, **१७.** श्रीश्रीचैतन्य-चरितामृत ३/८, **१८.** श्रीश्रीचैतन्य भागवत २/१०, **१९.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, ख. १/२०९, **२०.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, खं. १/६२४, **२१.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. १/३९९, **२२.** वही, खं. १/३९९, **२३.** वही, खं. १/३९३, **२४.** वही, खं. २/६३५, **२५.** वही, खं. १/२१०, **२६.** वही, खं. १/१९०, **२७.** श्रीचैतन्यमहाप्रभु, पृ. ५५-५६, **२८.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. २/ ६९१, **२९.** वही, खं. २/ ७७३, **३०.** वही, खं. २/७८३, **३१.** वही/खं. २/९०७, **३२.** श्रीश्रीचैतन्यचरितावली / पृ. २५३, **३३.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. २/७०१-७०२, **३४.** वही, खं. १/४३७, **३५.** श्रीश्रीरामकृष्ण-पुँथि, पृ. २२७, **३६.** श्रीचैतन्यमहाप्रभु पृ. ५७, **३७.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. १/ २०८, **३८.** वही, खं. १/४८१, **३९.** श्रीश्रीचैतन्य भागवत १/६, **४०.** श्रीश्रीरामकृष्ण-पुँथि, पृ. १८, **४१.** श्रीरामकृष्णवचनामृत पृ. ८५१, **४२.** श्रीचैतन्यमहाप्रभु, पृ. १२५-२८, **४३.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. १/४७९, **४४.** वही, खं. १/१७७-१७८, **४५.** श्रीश्रीचैतन्य भागवत, ३/२, **४६.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. १/२३७-२३८, **४७.** श्रीचैतन्यमहाप्रभु, ७४-८२, **४८.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खं. १/२७६-७७, **४९.** वही, खं. २/६३८, **५०.** युगनायक विवेकानन्द /खंड १/पृ.१७४.

रामकृष्ण का नाम है अनुपम

अक्षय कुमार सेन

हिन्दी रूपान्तर - रामकुमार गौड़

रामकृष्ण का नाम है अनुपम अनुभवगम्य स्वरूप सदा ।
महिमा अमित उसे ही मालूम जो नामामृत लीन्ह सदा ।।
एक व्यक्ति यदि गुण खाए तो, अन्य पाए वह आनन्द ।
सन्देही विश्वासहीन को मिल सके न ईश्वर-आनन्द ।।
पाप कोटि जन्मों के अर्जित कट जाते सब एक ही बार ।
यदि मन-वचन से कर लो, प्रभु का नामगान सुखसार ।।
परम दयामय ठाकुर ने निज श्रीमुख से कही है बात ।
उनके नाम में ममता जिसकी उसके वे रक्षक दिन-रात ।।
भावावेश हृदय आनन्दित दृढ़ विश्वास मिले गुणगान ।
नाम पतितपावन है उनका, प्रभु का नाम सर्वसुख खान ।।

गुरु के प्रसाद राम-नाम गुण गाइए

सन्त सुन्दरदासजी

गुरु के प्रसाद बुद्धि, उत्तम दशा को गहै,
गुरु के प्रसाद भवदुख बिसराइये ।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बाढ़ै,
गुरु के प्रसाद राम नाम गुण गाइये ।।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानै,
गुरु के प्रसाद शून्य में समाधि लाइये ।
सुन्दर कहत गुरुदेव जू कृपालु होई,
तिन के प्रसाद तत्त्वज्ञान पुनि पाइये ।।

ईश्वर को पाना ही है लक्ष्य हमारा

सुखदराम पाण्डेय

जीवन का उद्देश्य बताया है मेरे प्रभु तूने ।
मन का सारा भरम मिटाया है मेरे प्रभु तूने ।।
तूने आकर के धरती पर सबको गले लगाया ।
जिसका जो प्राप्तव्य यहाँ था सबने उसको पाया ।।
पथिकों को हर मोड़ पे ठाकुर तुमने दिया सहारा ।
जो भी आया पास हरा दुख तुमने उसका सारा ।।
कालचक्र को दूर भगाया है मेरे प्रभु तूने ।।
जीवन का उद्देश्य बताया है मेरे प्रभु तूने ।

हारे-थके तृषित जन आए पाने त्राण तुम्हारा ।
प्राणार्पण करके भी तुमने उनको नाथ उबारा !
सबके शोक भरे हृदयों में आशा-दीप जले जब,
ठहरे हुए कदम पथ पर गन्तव्य की ओर बढ़े तब ।।
जग को आनन्द-धाम बनाया है मेरे प्रभु तूने ।।
जीवन का उद्देश्य बताया है मेरे प्रभु तूने ।

जग-जन काम्य वस्तुओं का पागल-सा लगता था,
जिसके मन में जो आ जाता परवश बन करता था ।
भोग-भूमि कलकत्ते में कामा(रि)पुकुर से आकर,
भगवत-रस का पान कराया तुमने घर-घर जाकर ।।
कर्मों के बन्धन सहज गलाया है मेरे प्रभु तूने ।।
जीवन का उद्देश्य बताया है मेरे प्रभु तूने ।

एक मात्र ईश्वर को पाना ही है लक्ष्य हमारा,
तज हीरे को कंचे में मन लगा दिया क्यों सारा ।
व्याकुल होकर उन्हें पुकारो निश्चित दर्शन देंगे,
माया-मोह दोष सारे मन के तत्क्षण हर लेंगे ।।
वचनामृत से हमें जिलाया है मेरे प्रभु तूने ।।
जीवन का उद्देश्य बताया है मेरे प्रभु तूने ।

ईश्वरीय शक्ति का प्रकाश विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार का है, क्योंकि विविधता ही प्रकृति का नियम है। ईश्वर सभी प्राणियों में विराजमान हैं, वे एक चींटी में भी विद्यमान हैं, परन्तु प्रकाश में तारतम्य है।

— श्रीरामकृष्णदेव

प्रश्नोपनिषद् (२)

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का, 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया सरल हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाऽश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।।१।।

अन्वयार्थ – भारद्वाजः भरद्वाज के पुत्र **सुकेशा च** सुकेशा और **शैब्यः** शिबि के पुत्र **सत्यकामः च** सत्यकाम और **गार्ग्यः** गर्गगोत्र में उत्पन्न **सौर्यायणी च** (सूर्य के पौत्र) सौर्यायणी और **आश्वलायनः** अश्वल के पुत्र **कौसल्य**: कौसल्य **भार्गवः** भृगुवंशीय **वैदर्भिः** विदर्भ प्रान्त में उत्पन्न **कात्यायनः** कत्य के पुत्र **कबन्धी** कबन्धी – **ते ह** (ऐसे नाम-गोत्रवाले) ये लोग **ब्रह्मपराः** अपर-ब्रह्म-परायण **ब्रह्मनिष्ठाः** अपर ब्रह्म की आराधना में निष्ठा रखनेवाले **एते** ये लोग **परं** पर ब्रह्म को **ब्रह्मान्वेषमाणा** जानने की इच्छा लेकर – **एष** ये **ह वै** निश्चित रूप से **तत्सर्वं** वह सब कुछ **वक्ष्यतीति** बताएँगे – **इति** ऐसा सोचकर **ते ह** वे लोग **समित्पाणयो** हाथों में समिधा अर्थात् यज्ञकाष्ठ लिये हुए **भगवन्तं** भगवान **पिप्पलादम्** पिपल्लाद के पास **उपसन्ना**: पहुँचे।।१।।

भावार्थ – भरद्वाज के पुत्र सुकेशा और शिबि के पुत्र सत्यकाम और गर्गगोत्र में उत्पन्न (सूर्य के पौत्र) सौर्यायणी और अश्वल के पुत्र कौसल्य भृगुवंशीय विदर्भ प्रान्त में उत्पन्न कत्य के पुत्र कबन्धी – (ऐसे नाम-गोत्रवाले) ये लोग; अपर-ब्रह्म-परायण, अपर (सगुण) ब्रह्म की आराधना में निष्ठा रखनेवाले ये लोग, परब्रह्म को जानने की इच्छा लेकर – ये निश्चित रूप से वह सब कुछ बताएँगे, ऐसा सोचकर वे लोग हाथों में समिधा अर्थात् यज्ञकाष्ठ लिये हुए भगवान पिपल्लाद के पास पहुँचे।

भाष्य – सुकेशा च नामतः, भरद्वाजस्य अपत्यं भारद्वाजः; शैब्यश्च शिबेः अपत्यं शैब्यः सत्यकामो नामतः; सौर्यायणी सूर्यः तस्य अपत्यं सौर्यः, तस्य अपत्यं सौर्यायणिः छान्दसः सौर्यायण इति। गार्ग्यो गर्ग-गोत्र-उत्पन्नः; कौसल्यश्च नामतः अश्वलस्य अपत्यम् आश्वलायनः; भार्गवो भृगोः गोत्र-अपत्यं भार्गवः। वैदर्भिः विदर्भे भवः; कबन्धी नामतः, कत्यस्य अपत्यं कात्यायनः, विद्यमानः प्रपितामहो यस्य सः; युवप्रत्ययः।

भाष्यार्थ – (१) भरद्वाज के पुत्र भारद्वाज, जिनका सुकेशा नाम था; (२) शिबि के पुत्र शैब्य, जो सत्यकाम नामवाले थे; (३) सूर्य के पुत्र सौर्य तथा उनके पुत्र सौर्यायणि जो वैदिक प्रयोग में सौर्यायणी हो गया है और गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने से उन्हें गार्ग्य भी कहा जाता था; (४) अश्वल के पुत्र आश्वलायन, जिन्हें कौशल्य भी कहते थे; (५) भृगु गोत्र में उत्पन्न होने से भार्गव तथा विदर्भ के निवासी होने से वैदर्भि कहलानेवाले; और (६) कबन्धी नामवाले कत्य के पौत्र कात्यायन, जिसके पितामह जीवित हों, इस अर्थ में यहाँ 'युव' प्रत्यय लगा है।

ते हैते ब्रह्मपरा अपरं ब्रह्म परत्वेन गताः तद्-अनुष्ठान -निष्ठाश्च ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणाः – किं तत् यन्-नित्यं विज्ञेयम् इति, तत् प्राप्त्यर्थं यथाकामं यतिष्याम इति – एवं तद्-अन्वेषणं कुर्वन्तः तद्-अधिगमाय एष ह वै तत् सर्वं वक्ष्यतीति आचार्यम् उपजग्मुः।

ये सभी लोग अपर (सगुण) ब्रह्म को श्रेष्ठ समझनेवाले, उसी की उपासना में निष्ठा रखनेवाले थे; और इस प्रकार (निर्गुण) ब्रह्म की खोज करते हुए कि वह कौन-सा तत्त्व है, जो नित्य जानने योग्य है, उसकी प्राप्ति के लिए हम यथासाध्य प्रयास करेंगे – ये ही वह सब बता सकेंगे, ऐसा सोचकर वे लोग आचार्य (पिप्पलाद) के पास पहुँचे।

कथम्? ते ह समित्पाणयः समिद्-भार-गृहीत-हस्ताः सन्तो भगवन्तं पिप्पलादम् आचार्यम् उपसन्ना उपजग्मुः।।

कैसे गये? हाथ में समिधा का भार लिए हुए भगवान पिप्पलाद आचार्य के पास जा पहुँचे।।१।। **(क्रमशः)**

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/२)

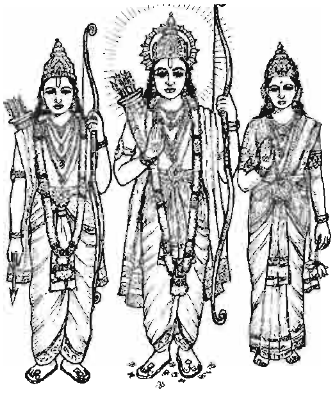

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान ने अपनी बानि प्रगट की। इसी के बाद अगला बहुत सुन्दर पद है – "श्रीरघुबीर की यह बानि।"

मैंने कहा, कि इसके द्वारा गोस्वामीजी यह बताना चाहते थे कि जो बान, आदत पड़ जाय, वह छूटना कठिन है। श्रीराम के रूप में इतने उदार थे कि वह बान छूटी नहीं और श्रीकृष्ण के रूप में भी वही करते रहे। बान तो श्रीराम की है और उस बान को श्रीकृष्ण-लीला में भी प्रस्तुत करके दिखाया। यही बानि की विशेषता है। इसमें भी क्रम है। बाल्यावस्था में भी पूतना का उद्धार, किशोरावस्था में गोपियों की महिमा, और आगे शिशुपाल की महिमा, अन्तिम लीला में व्याध के प्रति उदारता। बानि शब्द का अर्थ ही यह है कि जो छूटे न। गोस्वामीजी तो वस्तुत: यही मानते हैं कि वही श्रीराम है, वही श्रीकृष्ण हैं। इस तरह की बातें तो व्यंग्य-विनोद में कही जाती हैं। पर कई लोग तो उसे व्यंग्य-विनोद में न लेकर, बड़ा गम्भीर बना देते हैं। वे तो सचमुच ऐसा कहने लगते हैं कि श्रीराम में और श्रीकृष्ण में कौन छोटा और कौन बड़ा, कौन बारह कला का, कौन सोलह कला का है। अब ये जो गणना करनेवाले हैं, वे अपने स्थान पर ठीक हैं ।

गोस्वामीजी ने श्रीकृष्ण-गीतावली लिखा है, भगवान कृष्ण पर अनेक कविताएँ लिखी हैं। विनयपत्रिका में उनके चरित्र का दृष्टान्त भी दिया है।

लेकिन जब वे मन्दिर में गये और परशुराम नामक व्यक्ति ने व्यंग्य किया, तो गोस्वामीजी ने एकता दिखाने के लिए ऐसा किया। बड़ा दुर्भाग्य है कि लोग इस घटना को ठीक उलटे अर्थ में लेते हैं। लोग इसको इस अर्थ में लेते हैं कि हाँ, दूसरे के इष्ट को प्रणाम करना ठीक नहीं है। न, न, गोस्वामीजी तो उस परशुराम नाम के व्यक्ति को बताना चाहते थे कि भई, श्रीराम और श्रीकृष्ण, दोनों अलग थोड़े ही हैं। एक रूप में उन्होंने बंशी ग्रहण किया, और दूसरे रूप में धनुष। तब उस एकता को दिखाने के लिये उन्होंने ऐसा कहा था। जैसे आप अपने प्रिय से कहें कि आपने यह कपड़ा पहना है, अच्छा तो लगता है, पर इस कपड़े के स्थान पर आप अगर इस रंग का कपड़ा पहन लें, तो इस वस्त्र में आप अधिक सुन्दर लगते हैं। गोस्वामीजी ने ठीक वही बात कही –

कहा कहौं छबि आज की भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुष बान लेहु हाथ।।

क्या सुन्दर आपकी छबि है, कितने सुन्दर हैं, पर बंशी हटाकर जरा धनुष-बाण तो ले लीजिए। यदि गोस्वामीजी दो अलग-अलग मानते होते, तो क्या बंशी हटाकर धनुष-बाण ले लेने से ही प्रणाम कर लेते? मानो संकेत यह था कि बंशी धारण करके भी आप बड़े सुन्दर लगते हैं, पर मुझे तो धनुष और बाण धारण किए हुए देखकर ही अधिक आनन्द आता है। तत्काल भगवान भी अपनी एकता प्रगट करने के लिये बंशी को हटाकर धनुष-बाण ले लेते हैं। इसका अर्थ है कि यह जो भगवान का रूप है, वह भक्तों की भावना के अनुकूल रूप है। जिस रूप में भक्त उनका दर्शन करना चाहता है, एक ही ईश्वर उस रूप में उसे दर्शन दे देते हैं –

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।
७/७२/ख

वस्तुत: रूप तो प्रत्येक भक्त की भावना के अनुरूप हो जाता है। आप रामचरितमानस में पढें, तो देखेंगे कि रूप में भेद बहुत किया गया, किन्तु श्रीराम में नहीं। भगवान शंकर जो साक्षात् ईश्वर हैं और ज्ञान की दृष्टि से अद्वैत तत्त्व के आचार्य हैं, वे भगवान राम की वन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं श्रीराम के उस बालरूप की वन्दना करता हूँ –

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। १/१११/३

वे कहते हैं कि राम नहीं, राम में बालक-राम की वन्दना

करता हूँ। तो यहाँ भी वही प्रियता की बात आ जाती है। राम के बालक के रूप में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह उन्हें प्रिय है। इसलिए वे जोड़ देते हैं बालक रामू। कागभुशुण्डिजी ने भी कहा कि मुझे भी बालक राम प्रिय हैं, पर अन्तर यह है कि उसमें जब उन्हें पीले रंग के वस्त्र को कौशल्या माता पहना देती हैं, तो बहुत अच्छा लगता है।

पीत झगुलिया तनु पहिराई।

जानु पानि बिचरनि मोहि भाई।। १/१९८/११

ऐसी माँग संसार में किसी से भी करिए, तो वह कभी नहीं मानेगा। यदि आप किसी से कहें – आप ऐसे कपड़े पहनिए, ऐसे नहीं ऐसे चलिए, ऐसे नहीं ऐसे बैठिए, तो थोड़े ही कोई मानेगा। ये तो भक्तों के भगवान ही इतने उदार हैं कि भक्त जहाँ खड़ा कर दें, वहीं वे खड़े हो जाएँ, जो पहनावें वह पहन लें, जो कहें, वह कर दें। भगवान शंकर कहते हैं कि बालक के रूप में भी जब वे घुटने के बल चलते हैं, तो और अच्छा लगता है। अब शंकरजी की इच्छा है, तो भगवान घुटने के बल चलने लगते हैं। कौशल्या अम्बा जब पीला झंगुलिया पहना देती हैं, तो बड़ा अच्छा लगता है। कागभुशुण्डि ने जब कहा कि मुझे बालक राम बड़े प्रिय हैं, तो किसी ने कहा, हाँ, गुरु और शिष्य की उपासना पद्धति में कोई भेद नहीं होता, एक जैसी होती है। तब उन्होंने कहा, नहीं थोड़ा अन्तर है। बालक राम तो प्रिय हैं, और कुर्ता भी पसन्द है, पर एक शर्त उसमें जुड़ी हुई है। क्या? बोले –

पीत झीनि झगुली तन सोही।

पीला कपड़ा हो, पर मोटा न हो। अब लीजे, शंकरजी तो पीले रंग के मोटे कपड़े को भी धारण करा लेते हैं, उनको कोई आपत्ति नहीं है, पर कागभुशुण्डिजी कहते हैं –

पीत झीनि झगुली तन सोही।

पीले रंग का झीना वस्त्र सुशोभित हो रहा है और भगवान का घुटने के बल चलने में आनन्द नहीं आ रहा है। तब? बोले

किलकनि चितवनि भावति मोही।। ७/७६/७

जब वे मेरी ओर देखते हैं, किलकारी मारते हैं, तब मुझे अच्छा लगता है। यह उदार ईश्वर, जो इतने रूपों में आता है, इन सब भावनाओं के पीछे अपनी एक आनन्द की वृत्ति है। उसकी चर्चा आज नहीं करेंगे। यह तो भगवान का एक रूप है और यह भक्तों की भावना के अनुरूप है। पर एक शब्द है, 'स्वरूप'। हमने जो चाहा, भगवान ने वैसा रूप बना लिया, पर भगवान का स्वरूप क्या है? इसके लिये कहा गया –

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।

अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।

२/१२६/०

भगवान का स्वरूप अनिर्वचनीय है, बुद्धि से परे है, ज्ञानी, वेदान्ती पता लगाता है कि भगवान का स्वरूप क्या है? रूप नहीं, स्वरूप चाहिए। भगवान भी घोषित करते हैं कि उनके दर्शन में और अन्य किसी के दर्शन में एक अन्तर है। क्या? उन्होंने कहा कि संसार में अगर किसी व्यक्ति के पास जाइए और वह कुछ दे, तो उदार माना जाता है। पर भगवान ने कहा कि जब मेरे पास कोई आता है, तो मैं कुछ नहीं देता। बड़ी अनोखी बात कहते है –

मम दरसन फल परम अनूपा।

'अनूपा' क्या है? बोले –

जीव पाव निज सहज सरूपा।। ३/३५/९

जब भी मेरे सामने कोई आता है, उस जीव को अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। संकेत क्या है? एक ओर तो लेन-देन में उदारता है, पर भगवान मानो जीव को यह अनुभव करा देते हैं कि स्वरूप की दृष्टि से हममें और तुममें कोई रंचमात्र की दूरी नहीं है, भिन्नता नहीं है, कोई अभाव नहीं है। एकत्व का दर्शन जो वेदान्त का मुख्य प्रतिपाद्य है कि अपने स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहिए, ऐसा जो ब्रह्म का स्वरूप है, मेरे दर्शन से वह स्वरूप प्राप्त हो जाता है।

इस सन्दर्भ में अगर विभीषण के चरित्र पर विचार करके देखें, तो एक बड़े महत्त्व का सूत्र है। मैं आशा करता हूँ, आप लोग चैतन्य रहेंगे। अब दो दिन के लिये सोने का नियम तो तोड़ देना ही अच्छा रहेगा। उसमें संकेत आता है, विभीषण को भगवान राम ने लंका का राज्य दिया, ऐसा कहा जाता है। किन्तु क्या भगवान ने विभीषण को लंका का राज्य दिया? क्या वे ऐसा मानते हैं? इसका सांकेतिक तात्पर्य आध्यात्मिक सन्दर्भ में यह है – जब विभीषण भगवान राम की शरण में पहुँचते हैं, जब उनका श्रीराम से मिलन होता है, तो भगवान ने विभीषण को विभीषण कह

करके नहीं पुकारा। भगवान राम ने उनसे जो शब्द कहा, वह शब्द था, 'कहु लंकेश'। उन्होंने विभीषण को लंका का राजा कहा। लंकेश कहने के पीछे भगवान का उद्देश्य क्या है? इसको आप थोड़ा उस सन्दर्भ में विचार करके देखिए, जो इतने दिनों से आपके सामने सूत्र के रूप में चलता रहा कि विभीषण जीव है। वस्तुत: लंका का जो स्वामी है, वह जीव है, कि मोह है, इस पर विचार कीजिए? इसका अभिप्राय यह है कि जीवन में दिखाई तो यह दे रहा है कि मोह के द्वारा ही जीवन संचालित हो रहा है। हम लोगों के सारे काम-काज में, हमारे सारे व्यवहार में, हमारी सारी धारणा में वह मोह ही परिलक्षित होता है। पर सचमुच क्या मोह ही हमारे जीवन का स्वामी है? इसका उत्तर यह है कि मोह अगर जीवित भी है, तो वह जीव के द्वारा दी गई शक्ति से ही जीवित है, चाहे वह अनजाने में दी गई हो। उसको कई संकेतों से रामायण में प्रस्तुत किया गया। रावण की मृत्यु नहीं होती, तो त्रिजटा श्रीसीताजी से कहती है कि उसका हेतु आप हैं। एक दूसरा संकेत आता है कि भगवान राम रावण से युद्ध करते हैं, रावण के सिर और भुजाएँ काटते हैं और उसके बाद भी रावण की मृत्यु नहीं होती है। गोस्वामीजी ने बड़ी अनोखी बात लिखी। क्या?

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा।
राम बिभीषन तन तब देखा।। ६/१०१/२

प्रभु लड़ते-लड़ते थक गये। क्या अद्‌भुत भाषा है! रावण मर नहीं रहा है। तब भगवान विभीषण की ओर देख रहे हैं। जब यह प्रसंग भगवान शंकर ने पार्वतीजी को सुनाया, तो बोलीं, महाराज, ब्रह्म थक गया और वह जीव की ओर देख रहा है, यह तो कुछ न समझ में आनेवाली बात है। शंकर जी उत्तर देते हैं –

उमा काल मर जाकीं ईछा। ६/१०१/३

ब्रह्म तो वह है, जिसकी इच्छा से काल भी मर जाता है, लेकिन विभीषण से पूछने का जो तात्पर्य है, वह विशेष है। वह संकेत कई प्रसंगों में आता है। इसके लिए वेदान्त में बार-बार कई प्रकार के दृष्टान्त दिये गये हैं। उन दृष्टान्तों का तात्पर्य यह है कि जीव जो है, अपने स्वरूप को भूल गया है और अगर स्वरूप की स्मृति उसे आ जाय, तो वह समझ जाएगा कि इन दुर्गुण-दुर्विचारों से डरने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जैसा हम समझते हैं। उस प्रसंग में वह बात आपके सामने कही जा चुकी है। सारी लंका जल गई, किन्तु विभीषणजी का भवन नहीं जला। हनुमानजी यही बताना चाहते थे कि तुम महान हो कि रावण महान है। तुम शक्तिशाली हो कि रावण शक्तिशाली है। रावण तो अपने नगर को नहीं बचा पाया, सारे नगर में आग लगी, सब जल गया और तुम्हारा भवन नहीं जला। तुम पहचानो तो अपने आपको। दोनों ही सन्दर्भों में एक सूत्र यह है कि विभीषण जब रावण को बड़ा भाई मान लेते हैं, उसका अनुगमन करते हैं, उसके पीछे चलते हैं, तो यह जीव की भ्रान्ति है। उसने अपने आपको मोह का अनुगामी समझ लिया और यह मान लिया कि मोह राजा है और हम उसकी इच्छा के अनुकूल चलने के लिये बाध्य हैं। अगर वेदान्त की दृष्टि से विचार करें, तो इसके अनेक रूप हैं। भक्ति की दृष्टि से इसका अलग तात्पर्य है। उसकी चर्चा भी यथासाध्य करने की चेष्टा की जायेगी। भगवान विभीषण को जब लंकेश कहकर पुकारते हैं, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान उसको लंका का राज्य दे रहे हैं, भगवान तो याद दिलाते हैं कि वस्तुत: मैं नहीं मानता कि लंकेश रावण है, मैं तो मानता हूँ कि लंकेश तुम हो। क्योंकि लंका अगर प्रवृत्ति का दुर्ग है, तो प्रवृत्ति की शक्ति तुम जीव से मिलती है। प्रवृत्तियाँ जीवन में जितनी चलती हैं, जीव के रहते हुए ही चलती हैं। जीव अगर शक्ति न दे, तो क्या कोई प्रवृत्ति शरीर में, मन में चल सकती हैं? ये जितनी प्रवृत्तियाँ होती हैं, उसके मूल में जीव जब तक अवस्थित है, तभी तक संचालित हैं।

भगवान जब विभीषण को लंकेश कहकर पुकारते हैं, तो अगर वेदान्त की भाषा में कहें, तो भगवान राम कोई उदारता से दान नहीं दे रहे हैं, अपितु भगवान केवल स्मृति दिला रहे हैं कि नहीं, नहीं, विभीषण तुम तो लंका के स्वामी हो। मैं जानता हूँ कि तुम भ्रमवश उसके अनुगामी बन रहे हो। बाद में भगवान ने तिलक करने के बाद उस लंकेश शब्द को भौतिक साकार रूप दिया। **(क्रमश:)**

चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने बड़े-बड़े कार्य करने के लिए संसार का त्याग किया था। वर्तमान समय में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए संसार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको – यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो – जाओ, दूसरों की सहायता करो।

– स्वामी विवेकानन्द

शिक्षा ऐसे ग्रहण करें

स्वामी पद्माक्षानन्द

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद और पथप्रदर्शक के रूप में स्वीकर करे। हमारे जीवन में गुरु की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी कार्य को करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। चाहे वह आध्यात्मिक क्षेत्र हो, वैज्ञानिक क्षेत्र हो, सैन्य क्षेत्र हो या सांसारिक क्षेत्र, सभी जगहों पर गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के बिना किसी भी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। लेकिन प्रश्न यह है कि गुरु से ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाए, उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो, इत्यादि बातें बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए, इस पर हम मनन करेंगे।

तीन-चार वर्ष पूर्व की घटना है। तीन-चार छात्र संस्कृत की पढ़ाई करते थे। इन छात्रों में से एक का नाम दिनकर था। अध्यापक उनके घर में आकर पढ़ाते थे। एक दिन अध्यापकजी संस्कृत व्याकरण के एक सूत्र की व्याख्या कर रहे थे। दिनकर अध्यापक से कहता है कि आप इस सूत्र की गलत व्याख्या कर रहे हैं। अध्यापकजी ने उसे समझाया कि वे इस सूत्र की सही व्याख्या ही उसे समझा रहे हैं। लेकिन दिनकर किसी प्रकार मानने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। वह वाद-विवाद करने लगा। अध्यापकजी ने और भी विभिन्न प्रकार के उदाहरण देकर दिनकर को समझाने का प्रयास किया। बहुत समझाने के बाद दिनकर को वह बात समझ में आयी। तब दिनकर ने कहा "मैं इसके बारे में नहीं जानता था। मैं तो प्रश्न पूछ रहा था।" अध्यापक यह सुनकर अचम्भित रह गये। दिनकर न तो संस्कृत का कोई विद्वान था और न ही उसे संस्कृत की अच्छी समझ ही थी; किन्तु अपनी उदण्डता के कारण उसने गुरु की बातों को गलत प्रमाणित करने का प्रयास किया। बाद में कहता है – मैं तो प्रश्न कर रहा था। प्रश्न तो विनम्रता के साथ पूछा जाता है। जैसे गुरुजी, यह प्रश्न मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। कृपया मुझे इसकी व्याख्या करके समझा दीजिए।

गीता में अर्जुन ने भगवान से कहा –

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्ते हं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

"अज्ञानरूपी कायरता के दोष से मेरा स्वभाव ढक गया है और धर्म के विषय में मेरा चित्त मोहित हो गया है। मैं आपसे पूछता हूँ, जो मेरे लिए कल्याणकरी हो, वह निश्चय करके बताईये। मैं आपका शिष्य हूँ, अपनी शरण में आये हुए मुझे उचित उपदेश दीजिए।"

अर्जुन जब एक शिष्य के रूप में भगवान के शरणागत होता है, तब भगवान अपना उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं। तत्पश्चात् अर्जुन का मोहभंग होता है। वह क्षत्रियों का कर्तव्य युद्ध करने को तैयार होता है और विजय को प्राप्त होता है। इस श्लोक के पहले श्रीमद्भगवद्-गीता में भगवान के केवल दो ही श्लोक हैं, जिसमें भगवान अर्जुन को कह रहे हैं कि, हे अर्जुन! तुम उठो और क्षत्रियों की तरह आचरण करते हुए युद्ध करो। भगवान चाहते तो अर्जुन के बिना पूछे ही उपदेश दे सकते थे, किन्तु भगवान ने ऐसा नहीं किया। शिष्य अर्जुन जब अपने गुरु की शरण में ज्ञान, उपदेश, परामर्श के लिए शरणागत होता है, तभी गुरु श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं और अर्जुन की विजय होती है।

इस घटना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अपने गुरु से विनम्रता के साथ ज्ञान की याचना करनी चाहिए, उदण्डता एवं आदेश के साथ ज्ञान की माँग नहीं करनी चाहिए।

आधुनिक समय में जब गुरु-शिष्य के आचरणों में बहुत परिवर्तन देखने को मिल रहा है, तब बच्चों को इस समय उपरोक्त उदाहरणों से अपने व्यवहार में सुधार करके गुरु-शिष्य के पावन सम्बन्ध को एक बार पुन: गौरवान्वित करना चाहिए। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३१)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

आलमबाजार मठ में समागम

आलमबाजार मठ में पण्डित पंचानन तर्करत्न, श्रीयुत बहुवल्लभ शास्त्री और तत्कालीन सिन्ध प्रान्त के प्रसिद्ध 'सोफिया' पत्रिका के सम्पादक आदि हमलोगों से मिलने आया करते थे।

नाग महाशय

एक दिन करीब दस बजे, नाग महाशय, अपनी पत्नी के साथ एक टोकरी फजली आम लिये आलमबाजार में आये। उन्हें देखकर हम सभी सम्मानपूर्वक उठ खड़े हुए और उन्हें आसन पर बैठाने के लिये हमारा आग्रह देखकर वे भी संकुचित हुए। वे दोनों हाथ जोड़कर 'हरिबोल'-'हरिबोल' की ध्वनि करते हुए कमरे के इस छोर से उस छोर तक घूमने लगे। उन्हें आशंका थी कि कहीं हम लोग उनके चरणों का स्पर्श न कर बैठें। काफी अनुरोध के बाद भी वे बिस्तर पर नहीं, बल्कि थोड़ी दूर जाकर कमरे के फर्श पर ही बैठ गये। उनकी एकटक दृष्टि तथा अन्तर्मुख भाव असाधारण था। उनके मुख से, ठाकुर की बातें तथा हरिनाम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुनने को नहीं मिला था। सम्भवत: उस दिन हमारे हार्दिक अनुरोध पर उन दोनों ने ठाकुर का अन्न-प्रसाद ग्रहण किया था।

स्वामी अखण्डानन्द

स्वामी तुरीयानन्द और मैं उन्हें बहुत दिनों से जानते थे। पहले के दिनों में, हम दोनों प्रतिदिन बागबाजार की नहर से कुमारटोली घाट तक स्ट्रैंड रोड के किनारे टहलने जाया करते थे। उस समय विभिन्न स्थानों पर बैठकर नाम-संकीर्तन, ठाकुर के उपदेशों पर चर्चा और ध्यान करते हुए हमारा काफी समय निकल जाता था। उन दिनों नाग महाशय कुमारटोली घाट के अति निकट एक छोटे-से कमरे में निवास करते थे। हमलोग घूमते हुए गंगातट पर स्थित लोहे की सीढ़ी के नीचे उन्हें ध्यान करते हुए देखते थे। उनके द्वारा चुने हुए उस एकान्त स्थान को देखकर ही समझा जा सकता था कि वे किस तरह के साधक हैं। ज्वार के समय गंगाजी की लहरों की पवित्र बूँदों से उनके अंग शीतल हो जाते थे। हम लोग, काफी रात गये वहाँ जाकर उनकी उस ध्यानस्थ मूर्ति को देखने के लिये, बड़ी देर वहीं खड़े रहते।

नाग महाशय काशीपुर के उद्यान में ठाकुर का पहली बार दर्शन करने गये थे। वहाँ ठाकुर के सामने ही, उनके प्रसाद को उन्होंने पत्तों सहित चबाकर खा लिया था। इसे देखकर ठाकुर बोले, "इसी को दीनभाव की पराकाष्ठा कहते हैं।" ठाकुर तथा नाग महाशय के विषय में बहुत-सी बातें अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

ठाकुर के काशीपुर में निवास के दौरान, हमलोग बागबाजार की नहर पर पोर्ट-कमिश्नर द्वारा बनवाये गये सेतु के पश्चिमी तरफ के गोलाकार खम्भों के बीच बैठकर ध्यान किया करते थे। एक रात, करीब बारह बजे मैंने पोर्ट-कमिश्नर के एक सिपाही के मुख से राग-बिहाग में एक गीत सुना। उसे सुनकर मैं इतना स्तब्ध और मुग्ध हुआ कि मैंने उससे बार-बार उसे गाने का अनुरोध किया। काशीपुर के उद्यान में लौटकर मैंने स्वामीजी को उस गीत की कुछ पंक्तियाँ सुनाई थीं। उन्हें सुनकर वे बड़े खुश हुए और मुझसे पूरा गीत लिखकर लाने को कहा। अगली रात, सिपाही को फिर वहीं देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उससे सुनकर मैंने उस गीत को लिपिबद्ध कर लिया। गीत इस प्रकार है –

दूर से आये थे साकी, सुन के मयखाने को हम ।
बस तरसते ही चले, अफसोस पैमाने को हम ।।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं ।
दिल में आता है, लगा दें, आग मयखाने को हम ।।
बाग में लगता नहीं, सहरा से घबराता है दिल ।
अब कहाँ ले जाके बैठें, ऐसे दीवाने को हम ।।
क्यूँ नहीं लेता, हमारी तू खबर, ऐ बेखबर ।
क्या तेरे आशिक हुए थे, दर्द-ओ-गम खाने को हम।

संक्षेप में इस गीत का भावार्थ है – (एक प्रेमी कहता है) "हे साकी (सुरा ढालनेवाले), तेरी मधुशाला के बारे में सुनकर मैं बड़ी दूर से आया हूँ। तेरे दुकान को देखकर मुझे इसलिये अफसोस हो रहा है कि तेरे दुकान में सुरा है, मेज है, प्याला है, 'चखना' भी है, परन्तु साकी नहीं है। जी में आता है कि मैं तेरी इस मधुशाला में आग लगा दूँ। बगीचे में मन नहीं लगता, जंगल में भी मन नहीं लगता, अब इस पगले मन को लेकर कहाँ जाऊँ? ओ बेखबर, तेरी कहाँ ऐसी आसक्ति है, जो हमारी खोज-खबर नहीं ले पाता? मेरा तो दम निकला जा रहा है, तो भी क्या तेरे दिल में (जरा भी) सहानुभूति नहीं आती?"

फारसी भाषा में प्रेम दो तरह का होता है – 'इश्क हकीकी' और 'इश्क मजाजी'। ईश्वरी प्रेम को 'इश्क हकीकी' और जागतिक प्रेम को 'इश्क मजाजी' कहते हैं। यह गीत 'इश्क हकीकी' से सम्बद्ध है।

एक अन्य बात कहकर नाग महाशय का प्रसंग समाप्त करना चाहता हूँ। काशीपुर के उद्यान-भवन में रहते समय हमने सुना कि नाग महाशय ने दो-तीन दिनों से अनशन कर रखा है। मैं नाग महाशय का घर जानता था, इसलिये स्वामीजी उन्हें कुछ खिलाने के उद्देश्य से मुझे साथ लेकर उनसे मिलने गये। सहसा हम लोगों को देखकर नाग महाशय इतने संकुचित हुए कि इसे कहकर नहीं समझाया जा सकता। उनके कुछ खाने की बात कहने पर वे तत्काल कुछ कचौड़ियाँ तथा जलेबियाँ ले आये। उनके पास बैठकर हमने उन्हें वह खाने को दिया, इस पर वे वह सब हमारी ही गोद में ठेलते हुए बोले कि पहले हम लोगों के खाये बिना वे स्वयं नहीं खाएँगे। इस प्रकार उन्हें कुछ खिलाने के लिये हमें काफी प्रयास करने पड़े थे।

स्वामीजी का छोटा भाई महिम (महेन्द्रनाथ), मेरे भ्रमणों का वृत्तान्त सुनने के लिये, कई दिनों तक लगातार, अपराह्न के समय, सिमला से पैदल चलकर पसीने से तर-बतर आलमबाजार मठ में आता था। उसका अतिशय आग्रह देखकर किसी-किसी दिन, मैं उसे अपनी भ्रमण-गाथा बिना-सुनाये नहीं रह पाता था। मेरे ये संस्मरण उसे बड़े प्रिय लगते थे।

साधुसेवा और मातृभक्ति

स्वामीजी कहते थे, "कलियुग में मातृभक्ति और साधुसेवा का पुण्य-फल तत्काल प्राप्त होता है।" मातृभक्ति के दृष्टान्त-स्वरूप वे विद्यासागर महाशय, सुप्रसिद्ध बैरिस्टर उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय, श्रीयुत गुरुदास वन्द्योपाध्याय तथा डॉक्टर भगवान रुद्र के नाम का उल्लेख किया करते थे। स्वामीजी के घर के पास ही (उमेशचन्द्र) बैनर्जी महाशय का मकान था। उन दिनों विदेश जाकर वहाँ से लौटे, प्रत्येक व्यक्ति को जातिच्युत करके उससे समाज में, एक ही पंक्ति में बैठने का अधिकार छीन लिया जाता था। जब बैनर्जी महाशय अपने व्यवसाय में शीर्ष-स्थानीय थे, उन दिनों वे बारम्बार घर आकर, अपने मकान की चौखट के बाहर खड़े होकर अपनी मातृदेवी के चरणों में अंजली भर-भर स्वर्णमुद्रा डालकर प्रणाम कर जाते थे। अपनी मातृभक्ति के प्रभाव से उन दिनों हाईकोर्ट में उनके जैसा कमानेवाला बैरिस्टर दूसरा कोई नहीं था। ये सारी बातें मैंने स्वामीजी के ही मुख से सुनी थीं। विद्यासागर महाशय तथा गुरुदास बाबू की मातृभक्ति की बातें तो सर्वविदित हैं। डॉक्टर भगवान रुद्र भी अपनी मातृभक्ति के प्रभाव से थोड़े ही दिनों के भीतर बहुत बड़े आदमी हो गये थे, परन्तु उनका कम आयु में ही देहावसान हो गया।

उन दिनों, गंगासागर-यात्रा के पूर्व, विभिन्न अंचलों के संन्यासी आकर जगन्नाथ घाट से लेकर करीब प्रसन्नकुमार ठाकुर के घाट तक अपने डेरे जमाते थे। मैं उन लोगों को देखने जाता। इतने प्रकार के संन्यासी आते कि बताया नहीं जा सकता। उनमें से कितने ही ऊर्ध्वबाहु, शर-शय्याशायी और ठाढ़ेश्वरी (सदा खड़े रहनेवाले) साधु दीख पड़ते। इसके अतिरिक्त अवधूत संन्यासियों की टोलियाँ भी आती थीं।

बड़ाबाजार के मारवाड़ी लोग ढेर-के-ढेर पूरी-तरकारी तथा मिठाइयाँ ले आते और साधु-संन्यासियों को सन्तोषपूर्वक खिलाकर घर लौट जाते। मारवाड़ी लोग यह सेवा बारी-बारी से करते थे। गंगासागर-यात्रा के दिन वे लोग हर सन्त को एक कम्बल और जिनके पास लोटा नहीं था, उन्हें एक लोटा देकर बड़ी-बड़ी नावों में उन्हें गंगासागर भेज देते थे।

जो व्यवसायी जोधपुर, बीकानेर, जयपुर आदि राज्यों से, केवल लोटा-कम्बल मात्र लिये कलकत्ता नगरी में आकर, अपना छोटा-मोटा कारोबार शुरू करते थे, पचास वर्ष पूर्व के वे दाल-रोटी खानेवाले राजपूताना के गरीब निवासी इस सकाम साधु-सेवा के फलस्वरूप ही आज इस देश में अतुल सम्पदा के अधिकारी बने हैं। कलकत्ते में तथा उसके आसपास स्थित बड़े-बड़े भवन तथा उद्यान आज उन्हीं के ऐश्वर्य के द्योतक हैं। **(क्रमशः)**

जेन्टलमैन सोल्जर: कैप्टन विजयन्त थापर

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

कैप्टन विजयन्त थापर का जन्म २६ दिसम्बर, १९७६ में नोएडा, उत्तर प्रदेश के एक सैन्य परिवार में हुआ था। उनके पिता वी. एन. थापर और माता का नाम तृप्ता थापर था। उनके पिता भारतीय सेना में कर्नल के पद पर सेवारत थे। जब वे भारतीय सेना से कर्नल के पद से सेवानिवृत्त हुए, लगभग उसी समय १२ दिसम्बर, १९९८ में विजयन्त थापर सेकेंड राजपूताना राइफल्स में शामिल (कमीशंड) हुए। विजयन्त थापर 'बार्न सोल्जर' थे। बचपन से ही उनका सपना भारतीय सेना में शामिल होने का था।

३ मई, १९९९ में पाकिस्तानी सेना ने घुसपैठ करके कश्मीर के कारगिल जिले की ऊँची चोटी तोलोलिंग पर कब्जा किया। पाकिस्तानी सेना को कब्जे वाले क्षेत्रों से पीछे हटाने एवं भारतीय सीमा पर पुन: नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए भारतीय सेना ने भारत सरकार के दिशा-निर्देशानुसार 'ऑपरेशन विजय' प्रारम्भ किया। इसके बाद पाकिस्तानी और भारतीय सेना के बीच मई और जुलाई, १९९९ में पहला सशस्त्र संघर्ष 'कारगिल युद्ध' आरम्भ हुआ। इस युद्ध में पाकिस्तानी सेना की स्थिति मजबूत थी क्योंकि उनकी सेना की बटालियन ने तोलोलिंग चोटी पर कब्जा किया था, जिससे वे भारतीय सेना की हर गतिविधियों पर नजर रख सकते थे। उनका सामना करने के लिए हमारे सैनिक चोटियों पर अधिक वजन के साथ नहीं चढ़ सकते थे। ऐसी परिस्थिति में अधिक से अधिक गोला बारूद ले जाने की आवश्कयता थी। अत: हमारे सैनिक भोजन के पैकेट के स्थान पर अधिक गोला बारूद लेकर गए। जैसे ही भारतीय सेना ने चढ़ना प्रारम्भ किया, पाकिस्तानी सेना ने गोलीबारी प्रारम्भ कर दी, जिसमें १८ ग्रेनेडियर के लगभग २५ जवान शहीद हो गए। इसके बाद सेकेंड राजपूताना राइफल्स को हमला करने का उत्तरदायित्व दिया गया।

सेना के सर्वोच्च पदाधिकारियों ने सामरिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण तोलोलिंग में प्वाइंट ४९५० (बर्बाद बंकर पोस्ट) पर कब्जा करने के लिए विजयन्त थापर को उत्तरदायित्व दिया। लेफ्टिनेन्ट विजयन्त थापर की टुकड़ी उस समय जम्मू-कश्मीर के कुपवाड़ा में आतंकवाद विरोधी अभियान चला रही थी।

सेकेंड राजपूताना राइफल्स की ९० सैनिकों की उनकी टुकड़ी प्वाइंट ४९५० (बर्बाद बंकर पोस्ट) पर कब्जा करने के अन्तिम चरण में थी। १२ जून, १९९९ को पाकिस्तानी सेना ने अन्धाधुन्ध एवं भारी गोलियों की बौछारें प्रारम्भ कर दी। इस अभियान में विजयन्त थापर ने अपनी टुकड़ी के साथ पाकिस्तानी सेना के कब्जे वाले बर्बाद बंकर पोस्ट (प्वाइंट ४९५०) की ओर रात्रि में चढ़ना आरम्भ किया और उनके निकट जा पहुँचे। दोनों सेना के बीच अत्यन्त भीषण गोलीबारी के बीच त्वरित कार्रवाई करते हुए वे अपने शौर्य एवं वीरता तथा सुध-बुध का परिचय देते हुए आगे बढ़े और पाकिस्तानी सेना को मुँह-तोड़ जबाव दिया। १३ जून, १९९९ को उनकी टुकड़ी ने तोलोलिंग को पाकिस्तान के कब्जे से छुड़ा लिया। इस चोटी पर कब्जा करते हुए अनेक सैनिक शहीद और घायल हो गए। तोलोलिंग पर भारतीय सेना की यह पहली विजय थी। यह विजय भारत के पक्ष में सामरिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक सिद्ध हुई, क्योंकि तोलोलिंग की चोटी से पाकिस्तानी सेना श्रीनगर-लेह

कैप्टन विजयन्त थापर

राजमार्ग को निशाना बनाकर कारगिल एवं सियाचिन के लिए आवश्यक सामग्री की आपूर्ति को बाधित करना चाहते थे।

इसके बाद विजयन्त थापर को टाईगर हिल की सबसे कठिन और खतरनाक चोटियाँ नॉल एण्ड लॉन हिल पोस्ट, 'थ्री पिम्पल्स' (पिम्पल्स-१,२,३ – तोलोलिंग और टाईगर हिल के बीच की पहाड़ी) से पाकिस्तानी सेना को खदेड़ने का उत्तरदायित्व सौंपा गया।

विजयन्त थापर ने 'थ्री पिम्पल्स' पर जाने से पहले अपने माता-पिता को एक अन्तिम पत्र लिखा था –

प्रिय पापा-मम्मी, बर्डी और ग्रैनी,

' मेरा यह पत्र जब तक आपके पास पहुँचेगा, मैं आपको स्वर्ग से देख रहा होऊँगा। मुझे मृत्यु का कोई पछतावा नहीं है, बल्कि यदि मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लिया तो एक बार फिर से मैं सैनिक बनकर अपनी मातृ-भूमि के लिए शान से लड़ूँगा। यदि आप यहाँ आ सकते हैं, तो यहाँ आइए और देखिए उन दुर्गम स्थानों को जहाँ पर आपके उज्ज्वल भविष्य के लिए भारतीय सेना के वीर एवं बहादुर सैनिकों ने दुश्मनों से लोहा लेते हुए अपने प्राणों को देश की रक्षा के लिए न्योछावर कर दिया।

'मेरी टुकड़ी की बहादुरी और इस बलिदान की गाथाएँ आने वाले वीर सपूतों को सुनाई जाएँगी और मुझे आशा है कि मेरा फोटो कम्पनी के मन्दिर में करणी माता के पास रखा होगा। आगे जो भी उत्तरदायित्व हमारे कन्धे पर आएँगे, उन्हें पूरा करेंगे। मेरे आने वाले रुपयों में से कुछ भाग अनाथालय में देना और रूखसाना को हर महीने ५० रु देते रहना।

'हमारे वीर बहादुरों का यह बलिदान कभी मत भूलना। पापा आपको अवश्य ही मुझ पर गर्व होगा और माँ भी मुझ पर गर्व करेंगी। मामाजी, मेरी सारी शरारतों को माफ करना। अब समय आ गया है कि मैं अपने वीर शहीदों की टोली में शामिल हो जाऊँ।'

विजयन्त थापर ने अपनी बटालियन के साथ ब्लैक राक कॉम्प्लेक्स में -१५ डिग्री सेल्सियस तापमान और १५ हजार फुट ऊँची टाईगर हिल की नॉल एण्ड लॉन हिल पोस्ट, 'थ्री पिम्पल्स' (पिम्पल्स-१,२,३- तोलोलिंग और टाईगर हिल के बीच की पहाड़ी) से पाकिस्तानी सेना को खदेड़ने के लिए चढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

२८ जून, १९९९ की मध्यरात्रि में विजयन्त थापर की टुकड़ी रस्सी की सहायता से खड़ी चट्टान पर चढ़कर नाल पोस्ट पर कब्जा करने के लिए आगे बढ़ी। अत्यधिक गोलीबारी के कारण कमांडर मेजर पी. आचार्य और जगमाल सिंह सहित कई सैनिक शहीद हो गए थे। इसलिए विजयन्त थापर अपने जवानों के साथ एक बड़ी चट्टान के पीछे पहुँच कर रात्रि होने की प्रतीक्षा करते रहे। २९ जून, १९९९ की मध्यरात्रि को विजयन्त थापर ने अपनी टुकड़ी के साथ भीषण एवं अन्धाधुन्ध गोलीबारी के बीच में भी अद्भुत पराक्रम से अपने प्राणों की परवाह न करते हुए दुश्मन के नापाक उद्देश्यों को ध्वस्त कर 'थ्री पिम्पल्स' पर कब्जा करके तिरंगा फहरा दिया, लेकिन इस अभियान में गोलियों की बौछारों के दौरान एक गोली विजयन्त थापर के मस्तक पर लगी और वे हवलदार तिलक सिंह की बाहों में गिर गए और शहीद हो गए।

सैनिकों के प्रति लोगों की यह धारणा है कि वे हृदय से कठोर और भावनाहीन होते हैं तथा उनमें मानवीय संवेदनाओं और भावना के प्रति कोई सम्मान नहीं होता। परन्तु हम यह नहीं समझ पाते कि उनके भीतर भी तो एक मनुष्य के हृदय का ही स्पन्दन होता है, जो मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत है। विजयन्त थापर के जीवन में मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं के प्रति सम्मान दृष्टिगोचर होता है। उनके भद्र व्यवहार के कारण ही उन्हें 'जेन्टलमैन सोल्जर' कहा गया, जिसका परिचय कुपवाड़ा में उनकी टुकड़ी की तैनाती के दौरान दृष्टिगोचर होता है। कुपवाड़ा में वे रूखसाना नाम की ५-६ साल की एक बच्ची से मिले, जिसके माता-पिता को आतंकवादियों ने उसके सामने मौत के घाट उतार दिया था। इस सदमें में उसकी आवाज चली गयी। उस मासूम बच्ची को देखकर विजयन्त थापर का हृदय पिघल गया और हर रोज उससे मिलकर बातें करने लगे। रोज इस प्रकार उससे मिलने के बाद उसकी आवाज पाँच महीनों में वापस आ गई। विजयन्त उस बच्ची को अपनी बेटी के समान मानते थे। वे अपने घर से उसके लिए कपड़े मँगवाते और उसे चाकलेट तथा वार्षिक ५० रु. देते। इसलिए कैप्टन विजयन्त थापर पत्र में रुखसाना को हर महीने ५० रु. देने की बात लिखना नहीं भूले। आज भी विजयन्त थापर के माता-पिता रूखसाना से हर वर्ष मिलने जाते हैं और उसे आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं।

शेष भाग पृष्ठ ३१६ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (९३)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – महाराज, इस समय मेरे मन में रजोगुण और तमोगुण प्रबल हैं। निद्रा आती है, भूल जाता हूँ।

महाराज – हमारे शरीर, मन में जब रजोगुण और तमोगुण आए, तब जानना कि शरीर में कोई गड़बड़ी हुई है। हमलोगों का अन्नगत प्राण है। जो पूर्व संस्कारवश आध्यात्मिक चिन्तन करते हैं, उनमें कुछ रज, तम प्रकट हो सकता है। पहले लोगों को तामसिक आदि कहकर हँसी उड़ाई है, अब उसका फल भोग रहा हूँ। दिनभर केवल तमोगुणी - बिस्तर पर ही रहता हूँ।

गीता में, अन्त में मानव जीवन का सभी कुछ विस्तृत रूप से विश्लेषण करके बताया गया है। तीनों गुणों की बात विशेष रूप से बताई गई है। कई लोग तमोगुणी हैं, किन्तु सत्त्व के भ्रम में रहते हैं। फिर कोई-कोई चेहरे से सत्त्वगुणी होते हैं, किन्तु मुमुक्षु नहीं होते – वही पूजा-पाठ लेकर रहना चाहते हैं। कोई-कोई गीता, चंडीपाठ करते हैं। वह एक धर्म मात्र है। किसी विषय में प्रविष्ट होने की इच्छा नहीं होती है।

प्रश्न – तो फिर क्या गीता, चंडी आदि नित्य पाठ करने की आवश्यकता नहीं है?

महाराज – पाठ का उद्देश्य है पथ की जानकारी पाना। ठाकुर ने शास्त्र को जानकर चलने के लिए कहा है। वे स्वयं भी कहते हैं, "मैंने कितना सुना है।" कोई मनुष्य स्वाधीन नहीं है। उसके कर्म-फल से उसका स्वभाव बना है। एक गरीब ब्राह्मण विवाह कर बैठा है। वह कहता है – जिन्होंने जीभ दी है, वे आहार भी देंगे। कर्मयोग में स्वामीजी ने कहा है – तुम्हारे कर्म से ही यह अवस्था है, फिर कर्म द्वारा इसे बदला जा सकता है। भगवान की इच्छा, भाग्य का लेख, यह सब अहिन्दू मत है। भगवान आकाश में रहते हैं। हाथ से दिखाते हैं – ऊपर भगवान हैं।

गीता में स्पष्ट रूप से सारी बातें लिखी हुई हैं – भगवान क्या हैं? कृपा, अनुग्रह क्या है? कब, किसके ऊपर, कैसे, क्यों होता है? भगवान ने कहा है – 'ददामि बुद्धियोगम्' – (मैं बुद्धियोग अर्थात् तत्त्वज्ञान रूप योग प्रदान करता हूँ।)

स्वामी प्रेमेशानन्द

ध्यान से सुनो, धर्म है प्रकृति का नियम मानकर चलना, जीवन-चर्या क्या है, इसे जानकर चलना, जिससे इस जगत में सुख का भोग किया जाये। वैदिक शास्त्र में यही बात है – इस संसार में अच्छी तरह जीने का उपाय। पहले भोग होना चाहिए। पहले मान-सम्मान, अच्छा भोजन-वस्त्र आवश्यक है। नहीं तो, त्याग नहीं होता। ठाकुर ने कहा है – भोग का अन्त नहीं होने से व्याकुलता नहीं आती।

१-६-१९६३

एक युवक ब्रह्मचारी काशी में आया है। वह बीच-बीच में प्रेमेश महाराज के पास आता है और महाराज भी उसको स्नेह करते हैं। वह भोर में विश्वनाथजी का दर्शन करके प्रात:काल प्रेमेश महाराज के लिए फूल, माला, चरणामृत लेकर आता है। प्रेमेश महाराज उससे कहते हैं, "तुम साधु हो। तुम इतने पैसे क्यों खर्च करते हो? यदि पैसा मिलता है, तो गरीब को दो। तुम तो मन में ही पूजा कर सकते हो, नहीं तो एक बेलपत्र लेकर जाओ।" कुछ देर बाद एक डॉक्टर आए हैं, वे गृहस्थ हैं। महाराज उनसे कह रहे हैं, "देखो, गृहस्थाश्रम ज्येष्ठ आश्रम है। गृहस्थ आश्रम के ऊपर ही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं संन्यासी निर्भर रहते हैं। हमारे शास्त्र में है – **धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।** अर्थात् गृहस्थाश्रम से धर्म, न्याय, नीति, रीति सब की रक्षा होती है।"

९-६-१९६३

प्रश्न – महाराज, बीच-बीच में साधकों के पतन की बातें सुनी जाती हैं। भगवान तो सबका ध्यान रखते हैं, फिर भी पतन क्यों होता है?

महाराज – मनुष्य द्वारा उसके अवचेतन मन का अध्ययन नहीं करने से बड़ा अनिष्ट हो सकता है। पंचफोरन की महक पाकर अनजाने ही रसोई घर में आ गया। जाएँ, बहुत दिनों से उसे देखा नहीं है, देख आएँ। इसी सुयोग से उसके घर में जो महिला है, उसे देख लिया। एक व्यक्ति बड़े सज्जन हैं, किन्तु वे कल क्यों मुगलसराय चले गए, समझ नहीं पा रहा हूँ। पूछताछ करने से जानकारी मिली कि वहाँ उनके एक स्वजन हैं, वे उनसे मिलने गए थे, उन लोगों ने आदर-सत्कार किया! इस स्वजन के घर ने ही उन्हें खींच लिया था, किन्तु मुगलसराय स्टेशन का नाम लेकर गये। असली कारण तो स्वजन हैं, वही बहाना उनको स्टेशन पर लेकर गया था।

हम लोग भगवान को जो पचास प्रकार के व्यंजन तैयार करके निवेदित करते हैं, तो हम जानते हैं कि हमारी जीभ उसे चाहती है, किन्तु उसका उदात्तीकरण कर दिया है। जो नए साधु होते हैं, उनमें जिससे सामान्य समझ जाग्रत हो, उसे देखना होगा। साधु जीवन में क्या उद्देश्य है, उसे सुस्पष्ट कर देना होगा। थोड़ा खाने-पहनने की सुविधा दे देनी होगी, अपने आत्मीय, स्वजन की तरह व्यवहार करना होगा। एक मनुष्य के रूप में कार्य करना होगा। हम लोग सिलहट में जमीन खोदते थे। बाजार से खेत की खाद सिर पर ढोकर लाते थे। संभ्रान्त घरों के सभी बच्चे करते थे – सबमें खूब उत्साह था, बड़ी तृप्ति से रहता था। सभी सोचते कि वह सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी है। मैं तो किसी कार्यकर्ता तक को पराया नहीं समझ सकता था। उनके साथ मिल-जुलकर उनके साथ का ही एक व्यक्ति हो जाता था। होऊँगा क्यों नहीं? मेरे लिये तो कोई भी पराया नहीं है! कैसे उसका अच्छा होगा, यह प्रयास करता था। प्रत्येक कार्यकर्ता मुझे पिता के समान समझता। कभी भी किसी को पीड़ा नहीं देता। मैं किस को मारता नहीं था। शिक्षित लोगों में गाँव के प्रति, माता-पिता के प्रति प्रेम नहीं है। बच्चा अच्छी नौकरी करता है, माता-पिता बिना भोजन मर रहे हैं। पुन: चरित्र-निर्माण करने की आवश्यकता है।

८-८-१९६३

प्रश्न – मन में अहंकार आने पर क्या करना चाहिए?

महाराज – सोचकर देखो, तुम गली के बेकार के अलावा और क्या हो, नाम-यश नहीं है, धन नहीं है। अत: श्रीरामकृष्ण का ही एकमात्र भरोसा है। किन्तु जब तक कामकाज में रहा जाता है, उतने दिन थोड़ा मन में होता है – क्या हो गया रे! ठाकुर के नाम की, काम की महिमा देखो, वे एक-एक व्यक्ति को धीरे-धीरे अच्छा बनाकर कैसे प्रस्फुटित कर देते हैं। यही ठाकुर की लीला है।

माँ ने कहा है – "बाबा, कार्य ही लक्ष्मी है।" किन्तु ठाकुर ने कार्य-प्रवृत्ति के विरोध में बोला है। हमारा उद्देश्य तो कार्य नहीं है। तन और मन अपने पूर्व संस्कारवश कार्य करेंगे ही। हमारी बुद्धि का कार्य होगा, इसका परीक्षण करना और इसके साथ भगवान के प्रति आकर्षण का अनुभव करना। हमारा उद्देश्य तो अपने स्वरूप को जानना है। पत्र अच्छी तरह पढ़कर भी नहीं देखता। कई स्थानों पर नाम-यश होने से सब गड़बड़ हो जाता है। चिट्ठी पढ़कर भी नहीं देखता – क्या भेजने को कहा गया है और क्या भेज दिया है।

राजा महाराज आए और लीला करके चले गए, यह अनन्त काल की दृष्टि से एक सामान्य पल की घटना मात्र है। ठाकुर ने क्या किया है – एक खोल (आवरण) निर्माण कर उसके माध्यम से कुछ दिन ब्रह्मानन्द-स्वरूप में क्रीड़ा करके चले गए। उनकी वह लीला पलभर के लिये होकर भी साधक के लिये अनन्तकाल का आहार, भोजन है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३१४ का शेष भाग

मात्र २२ वर्ष की आयु में कैप्टन विजयन्त थापर ने कुशल नेतृत्व, अदम्य साहस, अतुलनीय पराक्रम, दृढ़ निश्चय का अनुपम परिचय देते हुए अनुकरणीय कर्तव्य तथा मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं का सम्मान करते हुए, देश के लिए सर्वोच्च बलिदान दिया। विजयन्त थापर को कैप्टन की पदवी (रैंक) मरणोपरान्त दी गई। भारत सरकार ने इस वीर सपूत की शहादत के लिए उन्हें मरणोपरान्त 'वीर चक्र' से अलंकृत किया। भारत-माता के इस वीर, बहादुर और भद्र (जेन्टलमैन सोल्जर) सपूत को हम कोटि-कोटि नमन करते हैं। ○○○

सांसारिक आशा-आकांक्षा, लोभ-मोह से भगवान नहीं मिलते

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमें क्या चाहिए? हम क्या करेंगे? इस पर सोचें। मन में बहुत सारी आशा-आकांक्षायें रहती हैं, इसलिये भगवान हमें मिलते नहीं। हमें अल्प सुविधा में ही सन्तुष्ट रहना चाहिए। जिस परिस्थिति में भगवान ने रखा है, उसी परिस्थति में आनन्द से रहना चाहिए। हमको जो आवश्यक है, उसको हम भूल जाते हैं और दूसरे सारी झंझटों में फँस जाते हैं। हमें अपनी आवश्यकताओं को कम करना चाहिए। उससे जीवन सरल हो जाता है और हम आनन्द से रह सकते हैं। हमारी शक्ति क्रोध, मोह, लोभ से कम हो जाती है। उस शक्ति को बचाकर भगवान की ओर लगाना चाहिए। लोभ की वृत्ति ऐसी है कि वह दिनभर हमारे साथ रहती है। मन का संतोष संसार की किसी वस्तु में नहीं मिलेगा। मन का संतोष मन में ही है। मानसिक सन्तुष्टि मन को समझाने से मिलेगी, संसार के किसी अन्य पदार्थ में मन को न लगाकर भगवान में मन लगाने से सन्तुष्टि मिलेगी।

संसार में जो कर्तव्य मिला है, उसे आनन्द से करें, किन्तु उस समय अगर भगवान की भक्ति और उनके प्रति प्रेम नहीं रहा, तो बहुत दुख, कष्ट होता है। इसलिए अनासक्त होकर हम परिवार, संसार का कार्य करें और अपने भगवान में रमे रहें। प्रभु ही अपने हैं। अपनत्व के लिये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए, तब मन में शान्ति आयेगी। संसार से आशा करना दुखदायक और बहुत बड़ा बंधन है। संसार को छोड़कर प्रभु से ही आशा करनी चाहिए। कठिनाइयों के समय में भगवान ही हमारी रक्षा और कल्याण करते हैं।

प्रौढ़ावस्था में संसार अच्छा नहीं लगता है। इसलिए आवश्यकतानुसार ही सांसारिक कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। बाकी समय भगवान में लगाएँ। संसार के ताने-बाने हमको ही बाँधकर रखते हैं, इन सबसे छूटने के लिए भगवान का नाम-जप और उनके शरणागत होकर रहें। दैनिक जीवन में हम अपेक्षायें करेंगे तो हमें दुख होगा। इसलिए अकेले रहने का भी अभ्यास करें।

मन परजीवी बनाकर बहुत दुख देता है। इसलिए भगवान की अपेक्षा रखकर प्रसन्न रहें। हम अच्छे रहेंगे, तो सारा संसार अच्छा रहेगा। केवल प्रेम और स्नेह से ही किसी को पकड़ा जा सकता है। अच्छे संस्कार नहीं रहने से हम दुख में पड़ते हैं। शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए, सजाकर नहीं। शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तो हम न संसार का काम कर पाएँगे, न भगवान का नाम ले पाएँगे। भगवान के नाम से आपके दांपत्य जीवन में, परिवार में सुख आयेगा। एक कहावत है – जो सहे, सो रहे। जहाँ चार लोग रहते हैं, वहाँ परस्पर सहना चाहिए। नहीं तो, शान्ति से नहीं रह सकते। लोग ताने देते हैं, तो उनकी ओर ध्यान न देकर चुपचाप सहना चाहिए। गरम दूध में नींबू को डालने से दूध फट जाता है, उसे कितना भी मथो, पर मक्खन नहीं निकलेगा। जीवन में कटुता प्रेम-दूध को फाड़ देती है। अत: सहनशील और प्रेमिक बनें।

पृथ्वी में कोई काम ऐसा नहीं है कि वह प्रार्थना से न हो। अत: सुख-शान्तिमय जीवन के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। अगर हम भगवान की शरण में जायेंगे, तो भक्तों का सभी दायित्व भगवान ही लेते हैं। वे हर पल हमारी रक्षा करते हैं। गलती हमारी है कि हम ईश्वर को छोड़कर संसार की झंझट में पड़ते हैं। हम जैसा सोचते, देखते हैं, उसका प्रभाव हमारे कर्मों पर पड़ता है। इसलिए अच्छा ही सोचो, अच्छा ही देखो, इससे हमारा आध्यात्मिक जीवन अच्छा बनेगा। अपने जीवन को बड़ा बनाने के लिये, उन्नत बनाने के लिये अपने मन की ओर और भगवान की ओर देखना है।

रुचि के अनुसार प्रवृत्ति होती है। उससे संस्कार बनता है। अपनी रुचि भगवान में बनाएँ। दूसरे लोगों की रुचि अलग है, हमारी रुचि संसार से अलग भगवान में होनी चाहिए। तब हमारा मन भी ठीक रहेगा। संसार में जो तुम चाहो, वह सब मिल रहा है। शराब भी मिल रहा है और दूध भी मिल रहा है। हमको विवेक से विचार करके दूध को ही लेना है। जो लोग जानते हैं कि शराब खराब है, तो वे कभी नहीं लेते। ऐसे ही हमें सोच-विचार कर अच्छी चीजों, अच्छे विचारों को ही ग्रहण करना है। ○○○

गगन की थाली, सितारे चाँद-सूरज

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

गगन मै थालु रवि चंद दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती।।
धूप मलआनिलो[१] पवणु चवरो करे
सगल बनराइ फूलंत जोती।।१।।
कैसी आरती होइ।। भव खंडना तेरी आरती।।
अनहता[२] सबद बाजंत भेरी।।१।। रहाउ।।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहिकउ
सहस मूरति नना एक तोही।।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु
सहस तव गंध इव चलत मोही।।२।।
सब महि जोति जोति है सोइ।।
तिस दै चानणि सभिमहि चानणु होइ।।
गुर साखी जोति परगटु होइ।।
जो तिसु भावै सु आरती होइ।।३।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो
अनुदिनो मोहि आहि पिआसा।।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग
कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा।।४।।

– आकाश की थाली में मोतियों की तरह सजे सितारों में सूर्य और चाँद दीपकों के सदृश जल रहे हैं। मलयाचल से आती सुगन्धित पवन धूप है, जिसकी सुरभि सब दिशाओं में फैलती हुई मानो चँवर डुला रही है। हरी-भरी वन-राजियाँ मानो पुष्पांजलि अर्पित कर रही हैं।

– हे भवसागर से मुक्त करनेवाले! अनाहत-अनहद -ध्वनि की भेरी के साथ यह तेरी कितनी अद्‌भुत आरती है !

– सहस्त्रों नेत्र हैं तुम्हारे, पर तुम्हारा एक भी नेत्र नहीं है। तुम निराकार हो, यद्यपि तुम्हारे सहस्त्रों आकार हैं। सहस्त्रों तुम्हारे निर्मल चरण हैं, पर तुम्हारा एक भी चरण नहीं है। कितने ही प्रकार की तुम्हारी गंध है, फिर भी तुम गंधरहित हो। यह सारा प्रसार मोहित कर देने वाला है।

– सब के अन्तरतम में जो ज्योति प्रकाशित है, वह उसी परमेश्वर की ज्योति है। गुरु की कृपा से ही उस ज्योति के प्रकाश का अनुभव होता है। यही वह आरती है, जो उस परम गुरु को प्रसन्न करती है।

– मेरा हृदय हरिचरणारविन्द के अमृत की रात-दिन चाह में रहता है। नानक कहते हैं, हे परमेश्वर! अपनी कृपा के अमृत से मुझ मयूर को कृतार्थ करो ताकि मैं आपके नाम पर आश्रित होकर रहूँ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, धनसिरी महला १, पृष्ठ१३)[३]

एक शैशव स्मृति –

अमृतसर चौथे सिख गुरु श्रीरामदास द्वारा बसाई गई नगरी है। इसी पुण्य भूमि पर पाँचवें गुरु श्री अर्जन देव ने आदि ग्रन्थ (बाद में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब) को संहिताबद्ध किया था। यहीं पर विश्वविख्यात श्री हरिमंदिर साहब है जहाँ प्रतिदिन सभी धर्मों के सहस्त्रों अनुयायी दर्शनार्थ आते हैं।

सौभाग्य से यह अमृतसर ही मेरी जन्मभूमि है। लगभग ७३-७४ वर्ष पुरानी बात है। मैं तब छह सात वर्ष का था। गर्मियों में अमृतसर के अपने घर में हमलोग रात को छत पर खुले आकाश तले सोया करते थे। रात में जब परिवार के अन्य सदस्य सो रहे होते थे, मैं जागते हुए प्राय: आकाश में टिमटिमाते तारों को देखता रहता था। मोतियों जैसी उनकी चमक मुझे प्राय: चमत्कृत करती थी। उस उम्र में मुझे आकाश-गंगा अथवा छाया-पथ जैसे शब्दों और उनके अर्थों तथा विशेष्यों का तो ज्ञान नहीं था, पर देर रात तक उन्हें देखते हुए मैं सोचता रहता था कि ये सितारे उलटे आसमान में बिना अवलंब कैसे टिके रहते हैं! शुक्ल पक्ष की रातों में यह आश्चर्य और बढ़ जाता था, यह देखते हुए कि कैसे चाँद दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है और पूरी आकृति ग्रहण करने के बाद अपने आप घटता-घटता विलीन हो जाता है।

बाद में चल कर यद्यपि मुझे इस दृश्य-प्रपंच की कुछ-कुछ समझ आने लगी थी, पर आज भी मैं यह सब एक वैज्ञानिक की दृष्टि से नहीं देख पाता। आज भी जब मैं खुले आकाश में इन नन्हें जुगनुओं को देखता हूँ, घटते-बढ़ते चाँद को, घटाओं में छिपते-प्रकटते सूर्य को देखता हूँ, तो प्रकृति की इस विचित्र लीला पर विस्मित तो होता ही हूँ।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब से परिचय

ऐसे ही उन वर्षों में मैंने रामचरितमानस और भगवद्गीता

के साथ-साथ ग्रन्थ साहिब का अध्ययन भी प्रारम्भ किया था। उन दिनों मैं अपनी माँ के साथ प्राय: हरिमन्दिर साहिब जाया करता था। वहाँ गुरबाणी तो सुनता ही था, मन्दिर की बाहरी परिक्रमा में लगे विज्ञापनों को भी देखता था। ये गुरुमुखी लिपि में अंकित होते थे। इनमें दरबार साहिब की सन्निधि में होनेवाले धार्मिक समागमों की जानकारी रहती थी। एक बालक की सहज उत्सुकता के कारण इन्हें पढ़ने की इच्छा मेरे मन में होती थी। माँ से पूछ-पूछ कर उन अक्षरों, शब्दों तथा वाक्यों को मैं जोड़-जोड़ कर पढ़ता था। उन्हें समझने का प्रयास करता था। हरिमंदिर में जब रागी गुरबाणी का पाठ अथवा सस्वर गान करते थे, तो मुझे बहुत अच्छा लगता था। मैं भी वैसे ही ग्रंथ साहिब का पाठ करना चाहता था। माँ ने मेरी उत्सुकता देखते हुए अपनी एक सिख सत्संगी बहिन से कह कर घर में ग्रंथ की स्थापना कर दी थी और वे लगभग प्रतिदिन कुछ समय घर पर आकर मुझे पाठ करना सिखाती थीं। यह क्रम कई दिन चला और इस बीच मैंने गुरुबाणी का यत्किंचित् अभ्यास कर लिया। इस पाठ को सीखते हुए और हरिमंदिर में शबद कीर्तन सुनते हुए ही मैंने उन आरम्भिक वर्षों में बाणी के रचयिता गुरुओं का भी कुछ-कुछ परिचय प्राप्त कर लिया था।

और फिर, यह आरती

बाणी का पाठ करने के क्रम में ही मेरा साक्षात्कार इस आरती से हुआ। यह ग्रंथ के तेरहवें पृष्ठ पर अंकित है। इसी को प्रस्तुत निबन्ध के विषय के रूप में, ऊपर उद्धृत किया गया है। यह आरती सिख धर्म के संस्थापक और प्रथम गुरु की रचना है। समय बीतने के साथ-साथ इसके शब्द और विचार-सौन्दर्य पर मैं उत्तरोत्तर मुग्ध होता चला गया। मैं इसे बार-बार पढ़ता और गाने का प्रयास करता था, इसके भाव-जगत् में पैठने की कोशिश करता था। गीता के साथ-साथ उपनिषदों का अध्ययन भी मैं कर रहा था। बहुत बाद में पता चला कि स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्र नाथ ठाकुर को भी यह आरती बहुत प्रिय थी।

धीरे-धीरे मैं इस आरती की शब्दावली को अपने बचपन की रातों में दिखाई देते आकाश के सितारों और चाँद के साथ, उनसे जुड़े अपने आश्चर्य और अनुभव के साथ जोड़ता चला गया। कितनी सुन्दर थी प्रथम गुरु की यह अलंकार-योजना : गगन की थाली में बारी-बारी से चाँद और सूरज को दीपक की तरह सजाकर आरती के लिये प्रस्तुत कर दिया गया है! असंख्य नक्षत्रों को उस थाली में भर दिया गया है और वे दीपक के आसपास मोतियों की तरह जगमगा रहे हैं। और कैसे? निरालंब टिके हुए, सुस्थिर, सुस्थित!

कितनी दशाब्दियाँ बीत गईं! पर आज भी इस अद्भुत कल्पनाशीलता पर मेरा मन मुग्ध होता है। भोर होने के साथ पृथ्वी की परिक्रमा आरम्भ करता है सूर्य। रात आने पर घटता-बढ़ता विलुप्त होता चाँद सहस्रों सितारों से घिरा अपने रचयिता की आरती करता है। मैं निस्तब्ध-सा ऊपर की ओर देखता हूँ। उस महान गुरु का, उस विश्वकवि का स्मरण करता हूँ, जो इस विशाल थाली को संजोए अकाल-पुरख, परब्रह्म परमेश्वर की आरती कर रहे हैं !

संसार वृक्ष : ऊर्ध्वमूलमधः शाखम्

'यह पारिजात वृक्ष जो मेरे हृदय रूपी आंगन में विकसित है, इसका मूल ऊपर है, शाखाएँ नीचे हैं। इसकी डालियों पर चारों वेद पत्रों की तरह लगे हैं। तत्त्वज्ञान रूपी पत्रों-पुष्पों से यह डालियाँ लदी हैं। जिसका अनुराग उस सर्व-ज्योतिस्वरूप, निरंजन और स्वयंभू प्रभु से हो जाता है, वह सहज ही अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अनावश्यक झंझटों (कर्मकाण्ड आदि) को त्याग दो :

उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेद जितु लागे।।
सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रह्म लिव जागे।।
पारजातु धरि आगनि मेरे पुहुप पत्र ततु डाला।।
सरब जोति निरंजन संभू छोड़हु बहु जंजाला।।[५]

ठीक ऐसी ही उपमा उपनिषद और भगवद्गीता में दी गई है, जहाँ इस वृक्ष को अश्वत्थ[६] कहा गया है। कठोपनिषद (२.३.१) में इस संसार को सनातन अश्वत्थ कहते हुए बताया है कि इसका मूल ऊपर तथा शाखाएँ नीचे हैं। वही पवित्र, अविनाशी परब्रह्म है। यह अलंघ्य है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी में स्थित हैं :

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येतिकश्चन।।

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता (१५.१) में ऐसा ही कुछ कह रहे हैं :

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

"इस अव्यय वृक्ष का मूल ऊपर और शाखाएँ नीचे

हैं। वेद इसके पत्र हैं। जो यह जान लेता है, वही वेदों का ज्ञाता है।''

गुरुनानक अपने अनुभव की अन्तर्दृष्टि से इस सम्पूर्ण दृश्य जगत का अवलोकन अपने अन्तस्तल में करते हैं –यद्ब्रह्माण्डं तत्पिंडम्। वे इस बात पर बल देते हैं कि परब्रह्म परमेश्वर की भक्ति से ही आत्म-साक्षात्कार सम्भव है। उपनिषद् और गीता के अनुसार इस सारे प्रपंच जगत् का, जो कि मन, बुद्धि और इन्द्रियों का विषय है, अधिष्ठान ब्रह्म ही है। वही सर्वोपरि मूल तत्त्व है। 'परमे व्योमन्' सर्वोच्च व्योम में वह अवस्थित है। अन्य सभी लोक – देव लोक, पितृ लोक, मर्त्यलोक, पशु-पक्षियों का संसार – सभी उसके नीचे हैं। ऐसे ही ज्ञान के सभी बुद्धिगम्य स्रोत भी उसके नीचे हैं, क्योंकि ब्रह्म उन सब से ऊपर और परे है। पर वही इन सबका मूल भी है। अत: 'ऊर्ध्वमूलम्'।

आरती में गुरु नानक का आध्यात्मिक दर्शन

गुरुनानक के दृष्टि-पथ में ऊपर आकाश में बिखरा विशाल नक्षत्र-मंडल, चाँद तथा सूर्य और भूमि पर प्रकृति की अपार धान्य-सम्पदा आती है। उन्हें रंग-बिरंगे पुष्पों से सजी वनराजियाँ दिखाई देती हैं। चंदन के वृक्षों के बीच से होकर आ रही सुरभित मलय-पवन उन्हें सुखद स्पर्श की अनुभूति देती है। उन्हें लगता है कि पूरा ब्रह्माण्ड उस परम पुरुष, परब्रह्म की वंदना में आरती की थाली सजाए खड़ा है। पेड़-पौधे, फल-फूल, सब्जियाँ, कंद-मूल, जड़ी-बूटियाँ, पशु-पक्षी, मनुष्य-देवता; सब उस विराट पुरुष की आरती में भाग ले रहे हैं।

परन्तु उस आरती को भला पूर्ण कैसे माना जाए, जिसमें भेरी का संगीत सुनाई न देता हो? तो नानक इस आरती के बीच ही मग्न मन अपने अन्तरतम से आती ध्वनि को सुनते हैं, यहाँ इन्द्रियाँ शान्त हैं, मन मौन है, बुद्धि स्थिर है। वह अवस्था जिसमें एक स्थितप्रज्ञ प्रकृति के इन सारे चमत्कारों को द्रष्टा बनकर अनासक्त भाव से देखता है। वह भाव जिसमें आश्चर्य और आनन्द का मिश्रण तो है, उनकी अनुभूति तो है, पर आसक्ति नहीं है। एक निर्लिप्त भाव है, जिसमें तत्त्ववेत्ता विषयों से विरत रहकर दृश्य जगत् में विचरण करता हुआ भी आत्मा में ही रमण करता है। गीता (२.५५) के शब्दों में, 'मन से आत्मस्वरूप का चिन्तन करते-करते उसी में सन्तुष्ट हुआ साधक जब अन्य समस्त मनोगत कामनाओं का त्याग कर देता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है'–

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

यही वह अवस्था है, जिसमें अनाहत – अनहद की भेरी सुनाई देती है, जिसे योगी, रहस्यवादी सुनते हैं। यों तो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है यह स्वर, पर श्रवण इसका वही कर पाता है, जो राग-द्वेषरहित होकर, इन्द्रियों के द्वारा विषयों को भोगता हुआ भी मन को वश में रखता है। तब अन्त:करण की निर्मलता में उसे यह दिव्य-संगीत सुनाई देता है :

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।[७]

पाँचवें गुरु श्री अर्जन देव कहते हैं कि जब संतों की संगति में रहकर काम, क्रोध, लोभ और अहंकार मिट जाते हैं, तब सारे पाप धुल जाते हैं, तब शरीर और मन स्थिर और शान्त हो जाते हैं तथा अनहद ध्वनि का अमृत बरसता है।

काम क्रोध लोभ मद खोए।।
साध के संगि किल बिख सम धोए।।[८] ...
अंम्रितु बरखै अनहद बाणी।।
मन तन अंतरि सांति समाणी।।[९]

अकाल पुरख : अव्यय, अजन्मा, अविनाशी

यह अनाहत ध्वनि ही नानक की आरती को परिपूर्णता प्रदान करती है। अनाहत, अर्थात् जो कभी, किसी के द्वारा, किसी स्थिति में आहत नहीं होता। अनहद, अर्थात् सीमाओं से परे। वह गूँज जो सर्वव्याप्त है। इसी से प्रपंच जगत् के सारे स्वर उत्पन्न हुए हैं। इसी स्वर के अमृत का एक बिन्दु जीव-जगत् को सुख का आभास कराता है। पर विडंबना यह है कि हम उस व्याप्त ध्वनि को सुन नहीं पाते, क्योंकि इसे सुनने के लिए जाना तो भीतर पड़ता है और हम इसे बाहर सुनने का – सांसारिक शोर में सुनने का प्रयास करते रहते हैं।

और यह आरती किसकी? वह जिसके सहस्रों – असंख्य नेत्र हैं, पर एक भी नेत्र नहीं है। सहस्रों पाँव हैं, पर एक भी पाँव नहीं है। उसका कोई रंग नहीं है, पर इस दृश्यमान जगत् के सब रंग उसी के हैं। यद्यपि वह 'अगन्धवत्' है, पर उसी की गंध सृष्टि में व्याप्त है। नानक कहते हैं कि यह आश्चर्यमय दृश्य जिसने विश्व को अपने आलिंगन में ले रखा

है, समझ से परे है, यह सारा प्रसार विस्मित कर देनेवाला है। मानव मन में, मानव बुद्धि की सीमा में समा नहीं पाता।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त (१०.९०.१-२) में उसी अकाल पुरख की महिमा का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि उस परम पुरुष ने, जिसके सहस्त्रों शीश हैं, सहस्त्रों नेत्र हैं, सहस्त्रों पाँव हैं, सब ओर से भूमि को व्याप्त किया और फिर सब दिशाओं से ऊपर लोकातीत होते हुए विराजमान हो गया। जो कुछ भी इस विश्व में था और होगा, वह वही पुरुष है। वह अमृतत्व का स्वामी और भौतिक जगत से ऊपर है :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।। (क्रमशः)

अन्त्य-संकेत : १. चंदन के वृक्षों से लदी दक्षिण भारत की पर्वत श्रृंखला। कवि प्राय: मलयाचल से आ रही वायु का उल्लेख चंदन की सुंगध फैलाने के सन्दर्भ में करते हैं।

२. अनहता – अनाहत/अनहद (जो आहत न हो। जिसकी सीमा न हो)। वह ध्वनि जो शरीर के चौथे चक्र से मुखरित होती है तथा जिसे योगी सुनते हैं।

३. गुरु ग्रंथ साहिब की सारी वाणी का शास्त्रीय रागों में वर्गीकरण किया गया है। महला सिख गुरुओं के संख्याक्रम को दर्शाता है। उदाहरणार्थ महला १, प्रथम गुरु श्री नानकदेव की रचनाओं के लिए है, महला २, गुरु अंगददेव की बाणी के लिए, इत्यादि। सभी गुरुओं ने अपनी रचनाओं के लिए नानक उपनाम का ही प्रयोग किया है। महला संख्या से उनके प्रथम नाम का परिचय मिलता है।

४. पंजाबी भाषा की मुख्य लिपि। ग्रंथ साहिब को मूल रूप में इसी में लिपिबद्ध किया गया है। गुरु के मुख से नि:सृत होने के कारण इसे गुरुमुखी कहा गया है। इसका दूसरा अर्थ गुरु की ओर शिष्य को उन्मुख करने वाली लिपि भी है।

५. ग्रंथ साहिब, राग गूंजरी, असट पदीआ महला १, घरु, पृष्ट ५०३

६. अश्वत्थ कौन-सा वृक्ष है, इस सम्बन्ध में अलग-अलग मत हैं। श्रीरामानुजाचार्य ने इसे अपने भाष्य में अश्वत्थ कहना ही उचित समझा है। (गीताप्रेस गोरखपुर, संवत २००४, पृष्ठ ४८२) संस्कृत-अंग्रेजी कोशों (मोनिअर विलियम्स तथा वी.एस आप्टे) में इसका अर्थ fig tree (अंजीर वृक्ष) किया गया है।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने गीता टीका (XV.1) में इसे पीपल और कठोपनिषद अनुवाद (Principal Upanisads, Kathopanisad II.3.1) में fig tree कहा है।

श्रीप्रभुपाद के गीताभाष्य में इसका अर्थ banyan tree वट वृक्ष - किया गया है। स्वामी वीरेश्वरानन्द ने श्रीधर स्वामी की गीता टीका के अन्तर्गत (Sri Ramakrishna Math, Chennai,. 2008, P. 419) पाद टिप्पणी में अश्वत्थ उस वृक्ष को कहा है, जो कल तक भी जीवित न रहे (अ+श्वत्थ; नश्वर)। पर यदि इसे मानें तो कठोपनिषद में जो इसे 'तदैदेवामृतम् कहा गया है, यह युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। आचार्य मधुसूदन सरस्वती की गुढार्थ दीपिका टीका के अन्तर्गत स्वामी गम्भीरानन्द ने इसका अनुवाद Peepul Tree किया है (Advaita Ashrama, Kolkata, 1998, P.777)। श्रीजयदयाल गोयन्दका की तत्त्वविवेचिनी टीका में भी इसे पीपल ही कहा गया है (गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २००४, पृष्ठ ५५६)। वनस्पति वैज्ञानिक के. एम. वेद ने कहा है कि अश्वत्थ अफ्रीकी मूल का वृक्ष बाओबाब है, जो शायद सदियों पहले भारत में आया था। इसकी आयु तीन-चार हजार वर्ष होती है। (देखिए दैनिक भास्कर, रविवारीय परिशिष्ट ८.१२.२०१९ में डॉ. किशोर पंवार का लेख)। ऐसे में इन विभिन्न मतों के बीच हम अश्वत्थ को अश्वत्थ ही रहने देते हैं।

७. गीता २.६४, **८.** ग्रन्थ साहिब, गौड़ी महला ५, पृष्ठ १९४, **९.** वही, माझ महला ५, पृष्ठ १०५.

दीक्षा गुरु : वे (श्रीश्रीठाकुर) कहते थे कि गुरु केवल सच्चिदानन्द ही हैं। श्रीश्रीठाकुर की इस शिक्षा के अनुसार ही हम सब अन्तर्यामी आत्मा को ही गुरु जानते हैं, और श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ के चित्र में जैसे उन्हीं अन्तर्यामी आत्मा का आविर्भाव देखते हैं, अपने दीक्षा गुरु में भी उसी अन्तर्यामी आत्मा का सशरीर आविर्भाव देखते हैं।

मन ही गुरु है : अपने मन के बारे में तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम, तुमने पढ़ा भी है कि मन ही गुरु है फिर भी तुम मन को शान्त करना चाहते हो। मन तुम्हारा शान्त ही है केवल उसमें सांसारिक संस्कार भरे पड़े हैं जिन्हें हटाने में समय लगेगा। जैसे-जैसे तुम्हें जप करने में रूचि होगी, वैसे-वैसे तुम्हारा मन साफ होता जायेगा।

इष्टदेवता का स्मरण : कुछ भी खाओ तो पहले प्रभु का, अपने इष्टदेवता का स्मरण करो, फिर खाओ। क्रमश: इसे अपने प्रत्येक कार्य के साथ करो। कुछ भी करना हो तो अपने हृदयस्थ श्रीश्रीठाकुर से स्पष्ट आज्ञा लेकर करो, जैसे श्रीश्रीठाकुर श्रीश्रीकालीमाता से बात किये बिना कुछ भी नहीं करते थे।

त्याग : उपासना-पद्धति में बताई गई विधियों का पालन यथासम्भव करते हुए जप-ध्यान की चेष्टा करते हुए जिस पथ पर चल रहे हो उसी पर चलते रहो। श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ तथा स्वामीजी की पुस्तकों को सुविधानुसार अध्ययन करते रहोगे तो कुछ वर्षों में तुम्हें तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे। संसार को त्यागने के लिए सांसारिक अनुभव बहुत ही आवश्यक है, वरना त्याग नहीं हो पाता। **– स्वामी गहनानन्दजी महाराज, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के १४वें परमाध्यक्ष।**

('गहन-आनन्द चिन्तन' पुस्तक से)

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (४३)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

६ दिसम्बर, १९०५ : मिस मैक्लाउड को

मैं पुराने पत्रों को फाड़ रही थी और उसी प्रक्रिया के दौरान तुम्हारे अनेक पत्र दुबारा पढ़ रही थी। मैंने पाया कि तुमने शायद ही कभी – किसी स्थान या 'यहाँ तक की व्यक्ति' को भी – दुबारा देखने की चेष्टा की होगी! इसके फलस्वरूप प्रेम का आवेग शिथिल हो जाना चाहिये, परन्तु मैं पहले के समान ही हँसती हूँ और सदा के समान, तुम्हारे पास लौट आती हूँ। यह रहस्यमय बन्धन! – यह क्या है? मैं यह कतई स्वीकार नहीं करूँगी कि हम लोग जो स्वामीजी से प्रेम करते हैं, उनके लिये वे कभी स्मृति मात्र के विषय रह जाएँगे कि वे कभी हमारे निकट एक महिमामय तथा अनन्त उपस्थिति मात्र रहेंगे; और इसके बावजूद दुनिया यह कहेगी कि हमारा सारा बन्धन अतीत काल में था। क्या ऐसा ही है? क्या हम लोग (उनके साथ) केवल स्मरण के माध्यम से जुड़े हैं?

अहा, मैं कितना चाहती हूँ कि हम लोग पुन: मिलते और दीर्घ काल किसी ऐसे शान्त स्थान में बिताते, जहाँ – वृक्ष, प्रवहमान नदी, घास के मैदान और खुले आकाश में तारे होंगे – जहाँ हम विश्राम करते हुए अपने अतीत को जगाते हुए, बारम्बार उस वर्ष में निवास करते, जब हमें इन्द्रियों के नहीं, अपितु आत्मा के स्वर्ग का बोध हुआ करता था।

शायद अब तुम एकान्त स्थानों को नापसन्द नहीं करती! परन्तु मैं एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहना चाहती हूँ, जो सर्वदा ऐसे परिवेश में निवास करते हुए सन्तुष्ट रह सके। मैं इतनी थक चुकी हूँ कि अब मैं वर्षों से ऐसा अनुभव कर रही हूँ मानो विश्राम को मैंने कभी जाना ही न हो, ... निरन्तर युद्धक्षेत्र का कोलाहल और शोरगुल, जो यदि मेरे पास नहीं, तो कुछ कदम दूरी पर ही होता रहा है। जब मैं बीमार थी, तब भी मुझे यथाशीघ्र स्वस्थ होकर कार्य में लग जाना पड़ता था। और कार्य ! वह तो कितना अपर्याप्त है, कितना अल्प है और हर्ष-विषाद की मन:स्थितियों द्वारा कितना परिसीमित है!

१२ जनवरी, १९०६ : मिस मैक्लाउड को

अहा, घर के चारों ओर हवा की कैसी चीत्कार सुनाई दे रही है! तुम सोचोगी कि यह उन दीर्घ काल पूर्व की दिवंगत आत्माओं की आवाज है, जो इस धरती पर रुदन कर रही हैं। शान्ति! शान्ति! महान् आत्माओ!! रात अँधेरी है, तथापि दर्शन आसन्न है और जगदम्बा की पुकार का उत्तर उन्हें अवश्य मिलेगा। उन्हें बलिदान प्राप्त होगा। और जगत् के लिये एक नव दिवस का अरुणोदय होगा।[१]

१५ मार्च, १९०६ : मिस मैक्लाउड को

यूरोप में ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिन्हें मैं देखना चाहूँगी और ऐसे अनेक लोग हैं, जिनसे मैं पुन: मिलना चाहूँगी। इसके बावजूद मुझे विशेष रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि मैं वहाँ दुबारा कभी जा नहीं सकूँगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत में बिताया गया मेरा प्रत्येक क्षण कुछ ऐसे कार्यों में व्यय होता है, जिन्हें स्वामीजी सम्पन्न हुआ देखना चाहेंगे।

१२ दिसम्बर, १९०६ : मिस मैक्लाउड को

स्वामीजी ने मेरे जीवन के लिये क्या योजना बनाई थी और मैंने इसे उससे कितना भिन्न बना दिया है, जब मैं इस विषय में सोचती हूँ, तो मुझे अपना हृदय पूर्णत: विदीर्ण प्रतीत होता है। यदि मैं यहाँ की गर्मी को सहन कर पाती और पूरे वर्ष भर यहाँ रह पाती, तो जैसा कि वे चाहते थे हम लोगों ने अपने 'निवास' में महिलाओं को रख लिया होता। परन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकती और मुझे लगता है कि यह वस्तुत: सच है कि मैं ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि अस्वस्थता ने सिद्ध कर दिया है कि यह मात्र स्वार्थपरता के

१. स्मरण रहे कि यह १२ जनवरी अर्थात् स्वामीजी के जन्मदिवस पर लिखा गया था।

कारण नहीं है। इसी कारण से, न कि स्वार्थपरतावश मेरे कार्य में परिवर्तन हुआ है।

मेरे इंग्लैंड जाने के पूर्व ब्रिटानी (फ्रांस) की वह रात क्या तुम्हें याद है, जब मैंने तुमसे कहा था कि मैं कैसे अज्ञात की ओर यात्रा कर रही हूँ – श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ की ओर अपने उन 'पिता' (स्वामीजी) से दूर, जो इतने प्रिय हो चुके हैं और तुमने कितनी दयालुता एवं सज्जनता दिखाई थी?

कभी-कभी मुझे लगता है कि यह मेरा पहला प्रयास है और मुझे बारम्बार प्रयास करने के अवसर मिलते रहेंगे। ईसाई धर्म ने अपने जन्म के ११०० वर्ष बाद सेंट फ्रांसिस को और १५०० वर्ष बाद सेंट टेरेसा को पैदा किया था। कौन जाने, उन लोगों ने कितने बार प्रयास किया था और असफलता का सामना किया था? परन्तु एक बार फिर! मैं ऐसी उपलब्धि के कोई संकेत नहीं देखती, बल्कि अवनति द्वारा स्वयं को निम्नतर स्तरों पर ही देखती हूँ।

ठीक है! पर इसके बावजूद, मैं इसे पकड़े रहकर (ऊपर की ओर बढ़ने का) प्रयास करती रहूँगी। परन्तु यहाँ तक कि जिन विषयों में, मैं स्वयं अपना मार्ग चुनने और अपने निजी आदर्श पर डटे रहने की प्रबल आवश्यकता महसूस करती हूँ, उनमें भी मुझे मौन तथा समर्पण के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं दिखता। परन्तु अहा, क्या मैं स्वयं को सौंपी गई अमानत के प्रति विश्वासघात कर रही हूँ? क्या यह सत्य है? क्या यह सत्य है? मेरी ओर से कौन उत्तर देगा? कौन देगा?

२८ मार्च, १९०७ : मिस मैक्लाउड को

वर्ष का यही समय है, जब मैं बेलूड़ में पहली बार तुम्हारे पास आयी थी। क्या तुम्हें याद है? मैं इसके विषय में बहुत सोचती हूँ, क्योंकि हम लोग एक बार फिर एक खुले हरियाली से पूर्ण स्थान में हैं। संध्या के समय, जब आँधी आती है, तो मानसपटल पर लौट आती है उस संध्या की स्मृति और वे 'भगवत्प्रेम' की बातें। वे ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें मैंने कभी ईश्वर-प्रेम देखा था। हम लोग उस (भगवत्-प्रेम) नाम से जो कुछ समझते हैं, वह वस्तुत: हमारे मानवीय प्रेम की एक क्षीण अभिव्यक्ति मात्र है।

समय कितनी तेजी से भागा जा रहा है! कैलेंडर के पन्नों पर कर्म तथा धन्यता से भरे दिन एक-दूसरे के पीछे भागे जा रहे हैं और व्यक्ति जब तक सजग हो, तब तक साल निकल जाता है। पूरा एक साल जिसे लौटाया नहीं जा सकता और मैं उसे लौटाना भी नहीं चाहूँगी, क्योंकि अन्त सर्वाधिक मधुर और महिमामय होगा। परन्तु जाने के मार्ग में ये सब इतने मूल्यवान लगते हैं कि व्यक्ति सोचता है कि इन सब के लिये पश्चाताप नहीं करने होंगे। हमारे उस स्वर्णिम वर्ष के विषय में मुझे इसी तरह की उपलब्धि हुई है। उन दिनों हमारा आनन्द इतना प्रबल था कि उससे अधिक कुछ हो ही नहीं सकता था। ऐसा ही है न! और यह विचार ही एक परम सान्त्वना की बात है।

४ अप्रैल, १९०७ : मिस मैक्लाउड को

यूरोप में सुदीर्घ प्रवास की सम्भावना पर विचार करते हुए सोच रही हूँ कि इसका क्या सुफल होगा! मैं निष्ठावान, निष्ठावान और निष्ठावान बनी रहने के लिये कितनी प्रार्थना कर रही हूँ! पिछले कुछ वर्ष इतने माधुर्य तथा आनन्द से परिपूर्ण रहे हैं कि मुझे आशंका होने लगी है, कहीं मैं जीवन की मधुरता के रेशमी जाल में सुखासक्ति के बन्धन में आबद्ध तो नहीं हो गयी हूँ। मैं घटनाओं या उपलब्धियों को नहीं, अपितु आदर्शों को रूपायित करने हेतु प्रार्थना करती हूँ। परन्तु असफल हो रही हूँ। व्यक्ति जब कुछ कम महत्त्वपूर्ण तथा संकीर्ण विषयों में सफलता पाने लगता है, तब वह त्याग का तात्पर्य ही भूल जाता है।

यहीं सिद्धान्तों तथा तत्त्वज्ञान के स्थान पर उपासना के लिये एक साकार मानवीय व्यक्तित्व वरदान-स्वरूप होता है। "हे मेरे अपने लोगो, मेरे पास आओ।" चाहे जो हो, अपनी समस्त त्रुटियों और कमियों के बावजूद, हम "उनके अपने हैं"।

२४ अप्रैल, १९०७ : मिस मैक्लाउड को

यदि स्वामीजी चाहते हैं कि मैं कोई विशिष्ट कार्य करूँ, तो वे निश्चय ही मेरी यात्रा के लिये समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देंगे। और वे मुझे वापस भी ले आएँगे। मैं आसानी से जा सकती हूँ, परन्तु इस समय मैं सब कुछ उन्हीं पर छोड़ती हूँ!

१७ जून, १९०७ : मिस मैक्लाउड को

स्वामीजी ने अवश्य ही विश्वविजय करने को जन्म लिया था, परन्तु विस्मय की बात है कि हममें से प्रत्येक किस प्रकार सीमाबद्ध है! जैसा कि स्वयं मैं आत्माओं की फसल को एकत्र नहीं कर पाती!

४ जुलाई, १९०९ : मिस मैक्लाउड को

हम लोग ब्रिन्दिसी पहुँच रहे हैं। महाशोक[२] की सप्तम वार्षिकी के अवसर पर तुम्हारे लिये दो-एक बातें – जो बुद्धदेव और शंकराचार्य थे, यही नहीं, बल्कि जो काल के प्रत्येक क्षण में स्वयं ज्योति-स्वरूप थे, हमें छोड़कर चले गये और हम इसी धरती पर आबद्ध पड़े हैं। परन्तु हम उनसे विच्छिन्न नहीं हुए हैं, क्योंकि उन्होंने देहरूपी वस्त्र का त्याग करते समय, कुछ खोया नहीं, केवल हमीं लोग ऐसे हैं, जिनकी दृष्टि मात्र क्षण भर के लिये भ्रमित हो गयी है। सात वर्षों का कालखण्ड ऐसा ध्वनित होता है, मानो तब तक परिपक्वता के किसी स्तर में प्रवेश होगा! और तुम्हारे साथ ऐसा ही होगा, इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं, क्योंकि तुमने इस दीप को प्रज्वलित रखने में अपना सारा जीवन खपा दिया है। जिस खिड़की में तुमने इसे स्थापित किया है, मेरी कामना है कि यह दीप उसी स्थान पर अनन्त काल तक जलता रहे।

७ दिसम्बर, १९१० : मिस मैक्लाउड को

सूर्योदय अभी तक नहीं हुआ है और चारों दिशाएँ हिम से ढकी हैं। मेरी चाय आयी और उसके बाद काफी देर से मैं लेटी हुई प्रार्थना कर रही हूँ कि हम सभी आत्मा और परमात्मा के बीच एक छोटा-सा गोपनीय स्थान रख सकें, जहाँ हम उनके साथ मिल सकें और सम्मोहनों (माया) के प्रभाव से बचकर, अनछुए रहकर विकसित होते रहें। मैं जानती हूँ कि यह एक उचित माँग है, क्योंकि स्वामीजी इसी भाव से परिपूर्ण थे और इसी को उन्होंने अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व बना लिया था। अनेक लोगों के साथ मित्रतापूर्ण संवाद तथा स्नेहपूर्ण सम्बन्ध वे इस क्षेत्र के बाहर ही रखते थे – अपनी सीमा के बाहर आकर वे उन लोगों की सीमाओं पर मनोयोग करते थे, परन्तु इन दोनों सीमाओं के भीतर हस्तक्षेप की न्यूनतम सम्भावना भी उन्हें पूर्णत: असह्य थी और इस आन्तरिक क्षेत्र के अबाध विस्तार को ही वे उन लोगों की और अपनी भी 'स्वाधीनता' कहा करते थे।

और प्रिय युम, यह स्वाधीनता आकार में चाहे जितनी भी छोटी हो, हम इसी के अन्तराल में अपने को सुरक्षित रखें! मेरी यही कामना है कि हम स्पष्ट से स्पष्टतर रूप के साथ सत्य तथा असत्य के बीच विवेक करना सीख सकें!

२८ दिसम्बर, १९१० : मिस मैक्लाउड को

कदाचित् तुम सोचोगी कि यह सब तो अहंकार ही प्रतीत होता है – (ऐसा लगेगा) मानो मेरे और केवल मेरे ही पास सत्य हो! परन्तु एक तरह से यह बात सत्य है। स्वामीजी ने मेरे हाथों में एक धागा पकड़ा दिया था और मैं उसी को पकड़कर चलने का प्रयास करती रही हूँ। ○○○ **(समाप्त)**

२. इसी दिन – ४ जुलाई, १९०२ को स्वामीजी ने देहत्याग किया था।

नीतिश्लोकाः

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

अहं नास्मि त्वमेवासि त्वय्येव च अहं गतः ।
भेदे समाप्तिभूते तु त्वमेव ह्यवशिष्यति ।।

– अब मैं नहीं हूँ, तुम ही हो। मैं तो तुममें ही समा चुका। भेद समाप्त होने के बाद तो केवल तुम ही शेष रह जाता है।

सुपुत्रेण कुलं धन्यं सद्भिर्धन्या वसुन्धरा।
देवा उपासकैर्धन्याः प्राज्ञशिष्यैर्गुरुस्तथा।।

– सुपुत्र से वंश धन्य होता है, सज्जनों से धरती धन्य होती है, उपासकों से देवता और प्रज्ञावान शिष्य से गुरु धन्यता-बोध करते हैं।

न दु:खं जीवने तस्य न मृत्योश्च भयं क्वचित्।
जीवन्मुक्तः सदानन्दी शम्भुर्येन समाश्रितः।।

– जिसने भगवान शिव का आश्रय ले लिया हो, उसके जीवन में दुख और मृत्यु का भय नहीं रहता है, वह तो जीवन्मुक्त होकर सदा आनन्द में निमग्न रहता है।

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५५)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! हमलोग कर्मयोग और उसके साथ साधन-भजन करने का प्रयास कर रहे हैं। कई लोग कहते हैं, इस गतानुगतिक दैनिक दिनचर्या को छोड़कर बीच बीच में तपस्या में जाना चाहिए।

महाराज – हाँ, वह बात ठीक है। बीच-बीच में तपस्या करने जाना चाहिए। क्योंकि वैसा जीवन तो हमलोग यहाँ अपने कार्य के बीच में नहीं कर सकते। जैसे ठाकुर कहते थे – "चावल ठीक से कूटा गया है कि नहीं; बीच-बीच में निकालकर देखना पड़ता है।" उसी प्रकार हमलोगों को भी अपने मन को कार्य के बीच में निकालकर देखना चाहिए।

प्रश्न – महाराज! क्या केवल ठाकुर-स्वामीजी को पढ़ने से नहीं होगा? क्या अन्यान्य शास्त्रों के अध्ययन का प्रयोजन है?

महाराज – ठाकुर-स्वामीजी के उपदेश में संशय कैसे दूर होगा, यदि तुम शास्त्र के साथ तुलना या विचार न करो? ठाकुर के जीवन के द्वारा विचार नहीं करने से शास्त्र का अर्थ भी ठीक से समझा नहीं जा सकता।

– महाराज! कई शास्त्रों में से बिल्कुल संक्षेप में क्या पढ़ना चाहिए? इतना अधिक तो हमलोग पढ़ नहीं पाते हैं।

महाराज – श्रीमद्भगवद् गीता पढ़ो। गीता सर्वशास्त्र सार है। केवल गीता पढ़ने से ही हो जाता है।

– महाराज! गीता-उपनिषद के श्लोक या मंत्र संस्कृत में कंठस्थ करने की आवश्यकता है या अनुवाद कंठस्थ करने से ही हो जायेगा?

महाराज – अनुवाद कंठस्थ करना कठिन है। श्लोक या मूल कंठस्थ रहने से कभी भी आवृत्ति करने एवं साथ-ही-साथ मनन करने में सुविधा होती है। इसीलिए तो इन सबकी श्लोक के रूप में रचना हुई है।

प्रश्न – महाराज! एक दिन आप कह रहे थे – क्योंकि हमलोग कर्म के बीच में तपस्या का भाव सर्वदा ठीक से बचाकर नहीं रख पाते हैं, इसलिए बीच-बीच में तपस्या में जाना चाहिए।

महाराज – सर्वदा तपस्या भाव बनाए नहीं रख सकते हैं, ये क्या बोल रहे हो। कहो - कभी भी बनाये नहीं रख पाते हैं।

– फिर आप कहते हैं – किसी से रुपया-पैसा मत माँगना। तो तपस्या में जाएँगे कैसे ?

महाराज – मत जाना! क्या अमुक स्थान पर जाने से ही तपस्या होगी, या मन को उस स्तर पर ऊँचा उठाना होगा?

– तब तो यहाँ बैठे ही हो जायेगा।

महाराज – बैठे तो नहीं रह सकोगे। पीछे ईंट जो बँधी हुई है। (सभी हँसते हैं)

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं – "स्वाधीन इच्छा वही रख देते हैं, नहीं तो संसार में पाप की वृद्धि होती।" साधारण लोगों के सम्बन्ध में इस बात का अर्थ समझ में आता है। किन्तु जो साधक सिद्ध हुए हैं, जिनकी स्वाधीन कोई इच्छा नहीं है, जो सर्वदा ईश्वरेच्छा से संचालित होते हैं, वे यदि कोई गर्हित कर्म करें, तो क्या उनके द्वारा संसार में पाप बढ़ेगा?

महाराज – पहली बात, ठाकुर ने ऐसे साधकों के प्रसंग में यह बात नहीं कही है, उन्होंने साधारण लोगों के सम्बन्ध में यह बात कही है। जिनकी स्वाधीन इच्छा नहीं है, उनके द्वारा पाप-वृद्धि नहीं होगी। क्योंकि उनमें कर्ता-बोध, कर्तापन नहीं है। जिनमें कर्ता-बोध, कर्तापन नहीं है, उनका कोई कर्म नहीं है। पाप-पुण्य तो कर्म का ही फल है। जब कर्म ही नहीं है, तो पाप-पुण्य कहाँ से आयेगा?

– क्योंकि उनका कर्ताभाव नहीं है, इसलिए वह पाप-कर्म उन्हें स्पर्श नहीं करेगा, यह तो ठीक है, किन्तु वह गर्हित कर्म संसार में रह गया, उससे हमलोग अर्थात् अन्य लोग कहेंगे न कि संसार में पाप की वृद्धि हुई?

महाराज – क्या सभी लोग उसका पाप-कर्म ही देखेंगे? उसका कर्ताभाव नहीं है, वह नहीं देखेंगे?

प्रश्न – महाराज! 'नेति-नेति' किए जा रहा हूँ, कहाँ विराम लूँगा?

महाराज – जहाँ नेति करने का कुछ नहीं रहेगा।

– इसे कैसे समझूँगा?

महाराज – अरे! कैसे समझूँगा क्या? नेति करने का कुछ रहा ही नहीं। अर्थात् जो है, वही है। जहाँ सभी संशय चले जाते हैं। जब तक संशय है, तब तक नेति-नेति चलेगा।

– यानि जहाँ विराम ले रहा हूँ, अर्थात् मैं जो अन्वेषण कर रहा था, उसे जहाँ प्राप्त किया। अर्थात् उस स्वरूप के सम्बन्ध में जानना हुआ, तभी विराम लूँगा। नहीं तो, वह भी नेति के द्वारा चला जायेगा।

महाराज – धत्! अन्त की बात आदि में बोल रहे हो। अपने को नहीं जानता है, ऐसा व्यक्ति कोई नहीं है। क्या तुम अपने को नहीं जानते हो?

–जानता हूँ, किन्तु वह जानना तो पूर्ण सत्य नहीं है।

महाराज – भले ही न हो। जितना जानते हो, वहाँ से आरम्भ करो। विचार करके आगे बढ़ो।

– विचार करता हूँ, किन्तु पुन: भूल जाता हूँ।

महाराज – नहीं भूलने के लिये ही तो निदिध्यासन है।

प्रश्न – महाराज! पंचीकरण को समझना बहुत कठिन है। विशेषकर वायु और आकाश को। जैसे पृथ्वी का गन्ध रंग इत्यादि है, किन्तु वायु और आकाश का तो वैसा नहीं है।

महाराज – जल का रंग, गन्ध है क्या? वास्तव में वायु, आकाश, ये सब सूक्ष्म होने के कारण समझ में नहीं आते हैं। किन्तु सूक्ष्म होने पर भी क्या अनुभव नहीं होता है? वायु का अनुभव होता है। आकाश को समझना कठिन है, फिर भी उसका भी अनुभव होता है। अनुभव होने पर पंचीकरण को मानना पड़ेगा। सच्ची बात है कि पंचीकरण या त्रिवृत्करण नहीं, उसी एक से ही जो सृष्टि हुई है, उसे ही समझने के लिए पंचीकरण है।

कहीं त्रिवृत्करण भी कहा गया है। क्योंकि पाँच इन्द्रियाँ हैं और उनके विषय भी पाँच हैं, इसलिए पंचीकरण कहते हैं। यदि हमलोगों की छह इन्द्रियाँ होतीं, तो षष्ठीकरण होता। (सभी हँसते हैं।)

– किन्तु महाराज, यह जो १/८ का अनुपात है, वह क्या ठीक है?

महाराज – वह तो सीधा अंक गणित का हिसाब है। एक का आठ आना और शेष चार का दो-दो आना। पूरा एक करना होगा तो।

– यह अनुपात कैसे ठीक हुआ? ये सारी चीजें कल्पना लगती हैं।

महाराज – (हँसकर) अरे! यह तो कल्पना ही है, पंचीकरण, त्रिवृत्करण कल्पना ही तो है। सृष्टि की व्याख्या करना चाहते हैं। इसलिए ऐसी एक कल्पना की गई है।

– इसके बाद चौदह भुवन है। **(क्रमश:)**

प्रेरक लघुकथा

ब्रह्मज्ञान गुरु ही दे सकते हैं

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

महर्षि ऋभु बहुत दिनों के बाद अपने शिष्य निदाघ से मिलने गए। निदाघ गुरु को न पहचान पाया। उसने अतिथि जानकर उन्हें भोजन कराया। फिर पूछा, ''महाभाग, आप कहाँ वास करते हैं? कहाँ से आगमन हुआ है? कहाँ प्रस्थान कर रहे हैं? भोजन से आपकी तृप्ति तो हुई ही होगी?''

महर्षि ऋभु ने उत्तर दिया, ''भूख-तृष्णा प्राण को होती है। मैं प्राण नहीं हूँ। प्राण के बदले तुम मुझसे पूछ रहे हो कि तृप्ति हुई या नहीं? रही बात मेरे वास करने, आगमन और प्रस्थान की, तो मैं कहीं आता-जाता नहीं, कहीं वास करता नहीं। शरीर आता-जाता है, आत्मा नहीं। तृप्ति विषय-रस पान से होती है। किसी वस्तु की इच्छा करना, उसे भोग्य मानना आदि माया कराती है। संसारी लोग माया के वशीभूत हो, अपना स्वरूप भूलकर रस-मग्न हो जाते हैं। माया मनुष्य को पूर्णरूप से अपने बन्धनों से जकड़ लेती है। इससे माया उसमें लालसा उत्पन्न करती है। उसके चंगुल से निकलना ही मनुष्य के लिये सुखकर होता है।'' निदाघ जान गया कि ऐसा ब्रह्मज्ञान मुझे गुरु महर्षि ऋभु ही दे सकते हैं। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा। उन्हें न पहचान पाने के लिये उसने क्षमा माँगी। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (७)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

भूत समुदाय अपने संस्कार के अनुसार सृजित होता है

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।८।।

स्वाम् (अपनी) प्रकृतिम् (प्रकृति) अवष्टभ्य (वश में करके) प्रकृते: (स्वभाव से) वशात् अवशम् (बलात् वश) इमम् कृत्स्नम् (इस सम्पूर्ण) भूतग्रामम् (भूत समुदाय को) पुन: (बारम्बार) विसृजामि (रचता हूँ)।

वे कहते हैं कि मैं अपनी प्रकृति को अपने वश में करके बारम्बार विसृजन करता हूँ। इस संसार की रचना करता हूँ और साथ-ही-साथ इसका लय भी करता हूँ। यह अर्थ इसके भीतर में छिपा हुआ है। भूतग्राममिमं कृत्स्नम् अवशं प्रकृतेर्वशात् – यह भूत समुदाय अवश है। अवश किसके है? अपने स्वभाव के कारण अवश है। अपने कर्म संस्कारों के कारण अवश है। विसृजामि – श्रीकृष्ण यहाँ कहते हैं कि इन भूत समुदाय को उनके कर्म संस्कारों के अनुसार बारम्बार मैं रचता हूँ। भगवान रचना कैसे करते हैं? इसका अर्थ यह हुआ कि फिर हम ये जो बने हुए हैं, हमारी जो मानसिक संरचना है, इसके लिए हम उत्तरदायी कैसे हुए? यदि ईश्वर ही सब कुछ बनाता है, तब तो ईश्वर को ही इसका उत्तरदायित्व लेना चाहिए। इस आशंका को भाँपकर अगले श्लोक में कहा गया है -

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।९।।

धनंजय (हे अर्जुन) तेषु (उन) कर्मसु (कर्मों में) असक्तम् च उदासीनवत् (निरासक्त और उदासीन रूप से स्थित) माम् (मुझको) तानि (वे) कर्माणि (कर्म) न निबध्नन्ति (नहीं बाँधते)।

– हे अर्जुन! उन कर्मों में निरासक्त और उदासीन रूप में स्थित मुझको वे कर्म नहीं बाँधते।

यहाँ पर भगवान यह कहते हैं – मैं किस प्रकार कर्म करता हूँ? क्या मुझमें कोई राग या द्वेष है? क्या मैं अपनी इच्छा से किसी को अच्छा और किसी को बुरा बना देता हूँ? वे कहते हैं, नहीं अर्जुन, मैं अपनी इच्छा से नहीं बनाता हूँ। उनके जैसे कर्म रहते हैं, उन कर्मों के अनुसार मैं उनकी रचना करता हूँ। जैसे प्रलयकाल आया। मान लीजिए, हम सारे-के-सारे प्रलयकाल में चले गए। प्रलय का अर्थ क्या हुआ? जिस समय मैं नींद में सोता हूँ, अपने सारे संस्कारों को लेकर प्रलय में जाता हूँ। नींद भी मेरे लिए एक छोटा-सा प्रलय ही है। जिसका अनुभव मैं प्रतिदिन अपने जीवन में करता हूँ। प्रलय में जाता हूँ, इसका अर्थ है कि मुझमें सारी क्षमताएँ हैं, मेरे भीतर सारे संस्कार हैं, पर वे संस्कार थोड़ी देर के लिए सोए रहते हैं। मान लीजिए, मुझमें वक्तृत्व का गुण है। जब सोता हूँ, तब मेरी वक्तृत्व शक्ति नष्ट नहीं होती। वह छिपी रहती है। संस्कार के रूप में जाकर वहाँ पर सुप्त रहती है। जब मैं सोकर जागता हूँ, तो जो गुण मेरे भीतर थे, वे फिर से प्रकट होने लगते हैं। मेरी क्षमताएँ प्रकट होने लगती हैं। परन्तु जब मैं नींद में जाता हूँ, तो ये सारी क्षमताएँ अपने बीज रूप में सोई रहती हैं। ठीक इसी प्रकार जिसे हम प्रलय कहते हैं, समष्टि-प्रलय कहते हैं, तो सारा संसार, जीव-जगत्, मनुष्य उनके जितने

भी संस्कार हैं, वे बीज योनि में चले जाते हैं, बीज रूप में पड़े रहते हैं। उसके बाद पुन: जब रचनाकाल आता है, तो पुन: वे क्षमताएँ प्रकट होने लगती हैं। जगत का सृजन होने लगता है।

यह evolution-involution का क्रम है – प्रलय के लिए हम involution कहेंगे और evolution कहेंगे विकास के लिए। जब प्रलय होता है, तब क्षमताओं का संकुचन होता है और सृजनकाल में पुन: उन्हीं क्षमताओं की अभिव्यक्ति और विस्तार होता है। यह चक्र चलता रहता है। इसी एक चक्र को हमने कल्प के रूप में पुकारा है। भगवान यहाँ पर यही कहना चाहते हैं कि अपने कर्मों के द्वारा जीव समुदाय अवश रहते हैं। अपने कर्मों के द्वारा ये बँधे हुए हैं। अर्जुन! इनके कर्मों के अनुसार मैं इनकी बारम्बार रचना करता हूँ। इस श्लोक के पहले भाग में उन्होंने कहा कि न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय – अर्जुन! मैं ये जो कर रहा हूँ, यह कर्म क्या मुझे बाँधता है? किसी को मैं अच्छा बनाता दिखाई देता हूँ, किसी को बुरा बनाता दिखाई देता हूँ, ये जो भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म दिखाई देते हैं, सृष्टि में ये जो वैचित्र्य दिखाई देता है, उस वैचित्र्य के कारण क्या मैं बन्धन में पड़ गया, धनञ्जय? मैं तो उदासीन के समान, साक्षी के समान, एक निर्लिप्त साक्षी के समान कर्म किया करता हूँ। जैसे एक न्यायाधीश है - वह गुणवत्ता के आधार पर अपना फैसला सुनाता है। न वह इस दल से मिला हुआ है और न उस दल से मिला हुआ है। जैसा उसके सामने प्रकरण उपस्थित होता है, वह फैसला सुना देता है। उसमें उसका कोई राग-द्वेष नहीं होता। ठीक उस साक्षी के समान उन कर्मों से अनासक्त होकर मैं यह किया करता हूँ। यह भगवान कह रहे हैं। इसका मतलब यह है कि जो विविधता दिखाई देती है, ये जो हमारी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, इन प्रवृत्तियों के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। यही बताने की यहाँ चेष्टा की गयी है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल स्वयं पाता है। ईश्वर क्या हैं? वे फल प्रदान करनेवाले ऐसे अद्‌भुत तत्त्व हैं, जो प्रकृति के साथ मिलकर जीवों को फल का बँटवारा करते हैं। उसी बात को दसवें श्लोक में कहा गया है –

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।१०।।

कौन्तेय (हे अर्जुन!) मया अध्यक्षेण (मेरी अध्यक्षता में) प्रकृति: (प्रकृति) सचराचरम् (चराचर जगत को) सूयते (रचती है) अनेन (इस) हेतुना (कारण) जगत् (यह जगत चक्र) विपरिवर्तते (घूम रहा है)।

– हे अर्जुन! मेरी अध्यक्षता में प्रकृति इस जगत को रचती है। इसी कारण से यह जगत-चक्र घूम रहा है।

यहाँ पर प्रभु कहते हैं कि मेरी अध्यक्षता में यह प्रकृति इन चर और अचर भूतों का सृजन करती है। वह कैसे सृजन करती है? प्रकृति मेरी अध्यक्षता में चराचर जगत का सृजन करती है। ईश्वर की अध्यक्षता में सृजन करती है। केवल इसी कारण हे कौन्तेय, यह संसार-चक्र घूम रहा है। अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर यह जो कह रहे हैं, मेरी अध्यक्षता में, इसका अर्थ क्या है? इसको हम एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। वह उदाहरण अत्यन्त स्थूल है। क्योंकि जब हम उदाहरण देते हैं, तो कई बार भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, पर केवल उस तत्त्व को समझाने के लिए ही यह उदाहरण दिया जा रहा है। जैसे एक किसान है। अब किसान क्या करता है? भिन्न-भिन्न प्रकार के बीजों का संयोग पृथ्वी के साथ कर देता है। अब यह जो फसल उत्पन्न होगी, वह तो बीज पर अवलम्बित है। यह बीज की गुणवत्ता और क्षमता पर निर्भर करेगी। बबूल का पेड़ हो, तो उसमें से बबूल का पेड़ ही निकलेगा। इमली का बीज हो, उसमें इमली का ही वृक्ष निकलेगा। तो यह जो किसान है, वह अपनी अध्यक्षता में मिट्टी का संयोग बीज के साथ करा दे रहा है। अब इसके बाद जो फसल तैयार होगी, वह तो बीजों के संस्कारों पर निर्भर करेगी कि वह फसल कैसी होती है। ठीक इसी प्रकार, उस किसान के समान ही ईश्वर अध्यक्षता करते हैं। उनका काम क्या है? यह जो प्रकृति है, ये जो भिन्न-भिन्न प्रकार के चेतन-समूहरूप जीवन हैं, इन दोनों का संयोग करा देना, यह ईश्वर का कार्य है। अपनी अध्यक्षता में ईश्वर यह संयोग करा देते हैं। इसके बाद उस जीव के भीतर में संस्कार भरा पड़ा है। वह संस्कार वृक्ष के रूप में निकलेगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्ष पैदा होंगे। वह तो उस जीव पर निर्भर करता है। यहाँ पर वही कहते हैं।

अब प्रश्न उठा कि ईश्वर कहते हैं कि मैं उदासीन रहता हूँ, फिर भी संसार का सृजन करता हूँ। तो उदासीन रहकर संसार का सृजन कैसे किया जा सकता है? उसी का स्पष्टीकरण इस श्लोक में मिलता है, जिसे हमने अभी किसान के उदाहरण से समझने की चेष्टा की। **(क्रमशः)**

भारतीय संस्कृति-धर्म-प्रचारक : स्वामी विवेकानन्द

डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी

सम्पादक, 'जयतु हिन्दू विश्व', कानपुर

राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत, अद्वैत-वेदान्त के अनुयायी, कर्मयोगी, समाज-सुधारक स्वामी विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी, १८६३ को कोलकाता के सम्भ्रान्त दत्त परिवार में हुआ था। आपका बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था। प्रारम्भ में ब्रह्म समाज के आदर्शों से प्रभावित नरेन्द्रनाथ श्रीरामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में आए और बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप भारत के प्रथम ऐसे सन्त थे, जिन्होंने प्राच्य भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृति के गौरवशाली पक्ष के सशक्त रूप से पश्चिमी भौतिकतावादी जगत को सुपरिचित कराया। सन् १८९३ और १९०० में विवेकानन्द ने दो बार विश्व-भ्रमण करके जगत् को भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक एकता से परिचित कराया। स्वामी विवेकानन्द ने अनुभव किया था कि प्राचीनकाल में अपना भारतवर्ष सुख-वैभव एवं सभ्यता के उच्च शिखर पर विराजमान था, सम्प्रति दरिद्रता, अज्ञानता व रुग्णता से अत्यन्त ग्रस्त है। अतएव स्वामीजी ने इन्हीं विसंगतियों व संकटों को दूर करने का बृहत् दृढ़ संकल्प ले लिया।

हिन्दू धर्म-दर्शन को पश्चिम की बुद्धिवादी, भौतिकतावादी जनमानस के समक्ष प्रतिपादन करने हेतु स्वामी विवेकानन्द ने ३१ मई, १८९३ को विश्वधर्म महासम्मेलन में भाग लेने के लिये अमेरिका की सुदीर्घ यात्रा प्रारम्भ की। उनकी इस यात्रा का अहैतुक उद्देश्य अमेरिका की भौतिक सुख-समृद्धि का लाभ विपन्न और गरीब भारत को पहुँचाना भी था।

शिकागो शहर में विश्वधर्म महासम्मेलन का प्रथम अधिवेशन ११ सितम्बर, १८९३ सोमवार को प्रारम्भ हुआ। कोलम्बस हॉल के विशाल सभागार में इस अधिवेशन में कॉर्डिनल गिबन्स ईसाई धर्म का, श्रीलंका के धर्मपाल बौद्ध धर्म का, नागरकर और पी.सी. मजूमदार ब्रह्म समाज का, गाँधी जैन धर्म का, चक्रवर्ती व एनी बेसेन्ट थियोसोफिकल सोसाइटी का, तथा स्वयं स्वामी विवेकानन्द हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

शिकागो अधिवेशन के सायं सत्र में स्वामी विवेकानन्द ने उपस्थित जनसमूह को उद्बोधन प्रदान करते हुए कहा, "बहनो और भाइयो! हमारा हिन्दू धर्म सभी धर्मों का जनक है। यह वह धर्म है, जिसने संसार को सहिष्णुता और सार्वभौमिकता की दिशा प्रदान की है। स्वामीजी ने अपने मत के समर्थन में श्रीमद्भगवद्गीता का प्रमाण प्रस्तुत किया –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

भाव यह है कि जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ओर ही आते हैं।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

शिवमहिम्न-स्तोत्र के माध्यम से उन्होंने बताया कि जिस प्रकार नदियाँ भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न उलटे-सीधे मार्ग से आनेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी ने इस प्रकार सभा में सिद्ध कर दिया कि धर्म में साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और धर्मान्धता आदि का कोई स्थान नहीं होता। स्वामीजी के विचारों को समझने के बाद सर्वधर्म सम्मेलन, शिकागो शाखा के अध्यक्ष मार्विन मेरी स्नैल ने कहा था, "आज इस सम्मेलन का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि स्वामी विवेकानन्द ने ईसाई जगत को विशेषत: अमेरिका के लोगों को यह संदेश और दिशा दी कि विश्व में अन्य धर्म भी हैं, जो ईसाई धर्म की अपेक्षा कहीं अधिक ठोस, स्वातन्त्र्य विचार की दृष्टि से कहीं अधिक शक्तिशाली एवं मानवीय सौहार्द की दृष्टि से कहीं अधिक व्यापक और उदार है।"

स्वामी विवेकानन्द आदि शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन से अति प्रभावित थे। उनका स्पष्ट मत था कि ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व है। यह विश्व ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। आत्मा सत्-चिद्-आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म और आत्मा अभेद है। स्वामीजी ने जिस वेदान्त का पश्चिम एवं स्वदेश में प्रचार किया, वह धर्म-दर्शन का व्यावहारिक पक्ष था। हिन्दू-धर्म एक बार पुन: वेदान्त के मार्ग पर चले, तो व्यक्ति को व्यक्ति से दूर हटानेवाली दीवारें ढह जाएँगी। प्राणिमात्र में उसी एक ब्रह्म की अनुभूति करना व्यावहारिक वेदान्त दर्शन है, जो विश्वकल्याण का साधन बन सकता है। स्वामीजी ने

भारतीय धर्म-दर्शन को रहस्यवाद, काल्पनिक एवं अनुपयोगी बतानेवालों का अकाट्य प्रतिकार किया। वेदान्त प्रेमी होते हुए भी स्वामीजी ने १ मई, १८९७ को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य मानव मात्र का आध्यात्मिक और भौतिक उन्नयन था। उनका आदर्श वाक्य था – 'आत्मनोमोक्षार्थं जगद्धिताय च' – अपनी मुक्ति और जगत का कल्याण। यह धर्म के प्रति स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचय प्रदान करता है।

अपने भारतवर्ष में स्वामी विवेकानन्द के मत की अपूर्व शक्ति है। उसे मात्र जाग्रत करने की आवश्यकता है। धार्मिक जीवन भारत की शक्ति का मूल है। स्वामीजी ने सचेत किया कि यदि तुम धर्म को छोड़कर समाज और राजनीति की शक्ति को केन्द्र बनाकर अनुकरण करोगे, तो तुम्हारी शक्ति विनष्ट हो जायेगी और तुम समाप्त हो जाओगे। मेरा मत है कि मनुष्य के लिये धर्म को अपने से पृथक् करना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि वह अपने मस्तिष्क और शरीर को ही अपने से पृथक् न कर दे। हाँ, धर्म भी वही है, जो बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरा उतरे। धर्म के बौद्धिक मूल्यांकन से जो मैल है, वह तो निकल जाता है, लेकिन जो अनिवार्य तत्त्व हैं, वे विजय प्राप्त कर लेते हैं।

स्वामीजी यद्यपि ज्ञान मार्ग के प्रबल समर्थक थे, साथ ही वे बुद्धि की सीमाएँ भी जानते थे। बुद्धि-बल से प्राप्त ज्ञान, यह सैद्धान्तिक रूप से भले ही यथार्थ लगे, वह हमें सम्पूर्ण सन्तोष प्रदान नहीं करता। जैसे एक मानचित्र हमें किसी स्थान के बारे में वास्तविक ज्ञान प्रदान कर सकता है, लेकिन वह ज्ञान उस ज्ञान की अपेक्षा कमजोर होगा, जो उस स्थान के प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त होता है।

स्वामीजी की सम्यक् दृष्टि में विज्ञान और धर्म का समुचित समन्वय अपेक्षित है। जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान भौतिक जगत् के नियमों का अनुसंधान करता है, ठीक उसी तरह धर्म नैतिक एवं तात्त्विक जगत् के आन्तरिक नियमों का अनुसरण करता है। विज्ञान और धर्म में मात्र पद्धति का ही भेद है। भारतीय हिन्दू समाज का सन्तुलन बनाए रखने के लिये यह आवश्यक है कि वह अध्यात्म के साथ-साथ अपनी भौतिक प्रगति, विज्ञान की सहायता से करे। इसी प्रकार पश्चिमी देश भी भौतिक समृद्धि के साथ-साथ अध्यात्म के मार्ग पर अपना कदम बढ़ाएँ।

विश्व के समस्त धर्मों की एकता में स्वामीजी का विश्वास था। उनका मत था कि किसी ईसाई को हिन्दू या बौद्ध बनने की आवश्यकता नहीं है, ठीक उसी तरह एक हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई बनने की जरूरत नहीं है। सभी धर्मों का मूल एक ही है। धार्मिक कर्मकाण्ड, धर्मग्रन्थ, सिद्धान्त, मन्दिर, मस्जिद व गिरजाघर में कोई भेद नहीं है। जो मतभेद हैं, वे बाह्य हैं, आन्तरिक नहीं। धर्म आत्मा से जुड़े हुए होते भी विभिन्न राष्ट्रों, विभिन्न भाषाओं, विभिन्न रीति-रिवाजों के द्वारा प्रकट होता है। अतएव मतभेद दिखाई देता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि तुम सभी व्यक्तियों की विचारधारा को एक नहीं कर सकते। विचारों के अन्तर और संघर्ष द्वारा नवीन विचारों का अभ्युदय होता है। व्यक्ति को अपना मन-मस्तिष्क सभी धर्मों एवं नवीन विचारों हेतु खुला रखना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द का ब्रह्म (ईश्वर) मन्दिरों की परिधि तक ही सीमित नहीं रहता। परमेश्वर व्यक्ति के समक्ष अनेक रूपों में हैं। जो परमेश्वर के बच्चों से प्यार करता है, वह परमेश्वर की सेवा करता है। गरीब, मूर्ख, असहाय और रोगी में भी परमेश्वर है। मानव सेवा करना महानतम धर्म है। जनता का अपमान करना राष्ट्रीय पाप है।

स्वामी विवेकानन्द के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना और आत्मगौरव की भावना का संचार हुआ। विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, डॉ. हेडगेवार, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार पटेल और नरेन्द्र मोदी आदि किसी न किसी रूप में उनका वैचारिक धरातल स्वीकार करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द आजीवन कर्म-धर्म को प्रधानता देते रहे। रूढ़िवादी अर्थ में उन्हें वैराग्य स्वीकार न था। वे कहते थे कि ज्ञान, कर्म और भक्ति मानव जीवन को उसके जीवन-लक्ष्य तक पहुँचाने में प्रबल सहायक हैं। स्वामीजी अपने आध्यात्मिक-सामाजिक कार्यों की व्यस्तता के चलते ४ जुलाई, १९०२ में मात्र ३९ वर्ष की आयु में ही इस भौतिक संसार से चले गए।

परिव्राजक स्वामीजी की पावन स्मृति में सम्प्रति हम उन्हीं की भाषा में आह्वान करें - गर्व से कहो कि हम भारतवासी हैं और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता हमारे परमेश्वर हैं। भारत का समाज मेरे बाल्यकाल का झूला, मेरी युवावस्था की फुलवारी, मेरा पवित्र स्वर्ग और मेरी वृद्धावस्था की काशी है। मेरे बन्धुओ! बोलो, भारत की मिट्टी मेरा उन्नत स्वर्ग है और भारत राष्ट्र के कल्याण में ही मेरा कल्याण है। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (१९)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१७ जून, १९६०, अद्वैत आश्रम, कोलकाता

इस दिन रात्रि में महाराज ने उत्तर काशी के विभिन्न साधु-सम्प्रदायों एवं अपनी तपस्या के बारे में बताया – "कितने प्रकार के संन्यासी हैं। ध्यानी साधु हैं, बाबू साधु – घड़ी बाँधे हाथ में रेडियो लेकर घूम रहा है। राजनैतिक साधु – दल निर्माण कर रहा है। कैलाश के रास्ते में एक नागा साधु का एक अन्य नागा साधु के साथ झगड़ा हो गया और उसने उसको धक्का मारकर जल में गिरा दिया। कई दयालु संन्यासी हैं, जिन्होंने अपना कम्बल दूसरे साधु को दान दे दिया। पागल साधु हैं, फिर विद्वान संन्यासी भी हैं।" महाराज की स्मृति तथा अवलोकन शक्ति अतुलनीय थी।

स्वामी भूतेशानन्द

महाराज प्रतिदिन नाश्ता के बाद बेलूड़ मठ जाने के लिए तैयार होते। वे चले न जायें, इसलिए मैं उनके जूते छिपा देता था। हमारी ओर संकेत करके बोलते, "तुम सब बहुत बदमाश हो। मुझे मठ जाने दो।" मैंने कहा, "कल जाइयेगा।" उसके अगले दिन उनके बनियान और वस्त्र को सर्फ में भींगाकर कहा, "आपका वस्त्र तथा बनियान मैला है। आप कल जाइयेगा।" "ओहो! आज भी तुमलोगों ने मुझे नहीं जाने दिया। देखो तो, निर्मल महाराज (स्वामी माधवानन्दजी) क्या सोचेंगे!"

अतीत में व्यतीत किये हुए उन दिनों का, मन में जब भी स्मरण होता है, तब न जाने कितना आनन्द होता है। उस प्रथम दर्शन से ही उनके साथ मेरी जो घनिष्ठता हुई थी, बाद में किसी अन्य संन्यासी के साथ वैसी नहीं हुई।

महाराज उस समय राजकोट आश्रम के महन्त थे। ०७.१०.१९६० को महाराज ने मुझे एक पत्र लिखा था, "ठाकुर हमारे सम्पूर्ण संघ को इसी प्रकार के पवित्र मधुर स्नेहपाश में आबद्ध करके रखें। यदि ऐसा नहीं होगा, तो संघ जीवन का कोई अर्थ ही नहीं है।

"हमारे जीवन के आदर्श ठाकुर-स्वामीजी हैं। यद्यपि वे लोग असीम एवं हमारे संकीर्ण सीमा के बाहर हैं, तथापि हम लोग जिस परिमाण में उनके ढाँचे में स्वयं को ढालेंगे, उसी परिमाण में हमारी साधना सार्थक होगी और धर्मजीवन परिपूर्ण होगा। अपूर्ण रहकर निरवच्छिन्न आनन्द की प्राप्ति करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं, फिर भी आदर्श-प्राप्ति के लिए प्राण-पण से प्रयत्न करना होगा। इसमें चाहे आनन्द हो या निरवच्छिन्न दुख ही हो। स्वामीजी का वाक्य स्मरण रखना, 'राम को यदि नहीं पाया, तो क्या श्याम को लेकर रहना होगा।' यद्यपि हमलोग दुर्बल हैं, तथापि उनलोगों की अनन्त शक्ति हमारे पीछे है। इसीलिए निर्भय बनो।"

१९६१ के मार्च-अप्रैल महीने में भारत के विभिन्न प्रान्तों से मठ-मिशन के बहुत-से संन्यासी बेलूड़ मठ आये थे। क्योंकि उस समय स्वामी माधवानन्द जी महाराज ब्रेन सर्जरी के लिए अमेरिका जानेवाले थे। वे संघ के एक विशेष संन्यासी एवं श्रीमाँ सारदा के शिष्य थे। भूतेशानन्दजी भी राजकोट से स्वामी माधवानन्द जी महाराज को देखने के लिए आये थे और अद्वैत आश्रम में बहुत दिन थे। १९६१ के प्रारम्भ में अद्वैत आश्रम ४, वेलिंग्टन लेन से ५, डिही एण्टाली रोड में स्थानान्तरित हो गया था। गम्भीरानन्दजी ने स्वामी भूतेशानन्द जी को रविवार की कक्षा लेने के लिए कहा। उस दिन भूतेशानन्दजी का गला अच्छा नहीं था। वे सुबह से ही गरम जल में नमक डालकर अनेक बार gurgle

(गराड़ा) कर रहे थे। वास्तव में, उस दिन उनका कण्ठस्वर बहुत ही खराब था। हममें से किसी-किसी ने उनको व्याख्यान नहीं देने के लिए कहा था। उन्होंने कहा, ''ठाकुर का कार्य है। देखना, मैं ठीक हो जाउँगा।'' उन्होंने खराब गले से ही एक घण्टे तक व्याख्यान दिया। शरीर को भूलकर ठाकुर का कार्य करना – घटना छोटी, परन्तु शिक्षाप्रद है।

परवर्ती काल में भी महाराज अद्वैत आश्रम में अनेक बार आये थे। स्मरण है, एक बार कनखल के माखन महाराज (स्वामी प्रज्ञानानन्द जी) एवं भूतेशानन्दजी महाराज एक साथ हमारे अतिथि हुए थे। भूतेशानन्दजी महाराज को एक गुजराती भक्त ने एक बाक्स गंजी दिया। माखन महाराज ने उसमें से कई गंजी ले लिया और कहा, ''विजय, तुम्हारे अनेक धनी-भक्त हैं। इतना गंजी मैंने ले लिया।'' महाराज ने कहा, ''सुनिए माखन महाराज, ये बनियान नहीं लीजिएगा। हमारा आश्रम गरीब है। भिक्षा से चलता है।'' माखन महाराज ने कहा, ''आश्रम तो भिक्षा से ही चलता है। इसके सिवाय कैसे चलेगा।'' दोनों मितव्ययी थे। मैंने देखा, दोनों वरिष्ठ संन्यासी गंजी को लेकर बालकवत् खिंचातानी कर रहे हैं।

महाराज की पुष्पा नामक एक गुजराती स्त्री-भक्त कोलकाता में रहती थीं। महाराज उनको बचपन से जानते थे। एक बार जब वे महाराज का दर्शन करने आयीं, तब हमने विनोद करते हुए उनसे कहा, ''आप साधु-दर्शन करने आयी हैं। नमकीन, फल-मिठाई के बिना क्या साधु-दर्शन होता है?'' वे हँसने लगीं और उसके दूसरे दिन बहुत-सा नमकीन, फल-मिठाई लेकर उपस्थित हुईं। महाराज के आश्रम में रहने पर आश्रम में भक्तों की भीड़ लगी रहती।

महाराज जहाँ भी जाते, वहाँ शास्त्रों पर कक्षा लेते एवं श्रीठाकुर, श्रीमाँ एवं ठाकुर के पार्षदों के विषय में वार्तालाप करते। भगवत्-प्रसंग से महाराज ऐसा वातावरण सृजित करते थे, जिससे मन सहज में ही ऊर्ध्वगामी हो जाता था।

महाराज राजकोट आश्रम से श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का गुजराती भाषा में अनुवाद प्रकाशित करनेवाले हैं। उन्होंने मास्टर महाशय के नाती अनिल गुप्त से अनुवाद प्रकाशित करने की अनुमति लेकर उनके पास भेजने के लिए मुझे लिखा। मैंने इसके बारे में जैसे ही अनिल बाबू को बताया उन्होंने सानन्द अनुमति प्रदान कर दी। महाराज कई भाषाओं के ज्ञाता थे। महाराज गुजराती-श्रीरामकृष्णकथामृत के प्रधान सम्पादक थे।

१९६६ ई. में महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव होकर राजकोट से बेलूड़ मठ आये। महाराज प्रत्येक रविवार मठ के पुस्तकालय भवन में श्रीरामकृष्णवचनामृत पर कक्षा लेते थे। अनेक भक्त आते थे। १९७० ई. में लखनऊ में विवेकानन्द पॉलीक्लिनिक का उद्घाटन हुआ। इस कार्यक्रम में १५२ संन्यासी आये हुए थे। वहाँ भूतेशानन्दजी महाराज गये थे और मैं भी गया था। श्रीधरानन्दजी महाराज ने अद्भुत व्यवस्था की थी। लखनऊ से हममें से बहुत-से लोग महाराज के साथ बस में अयोध्या, नैमिषारण्य एवं ब्रह्मावर्त देखने गये। मुझे स्मरण है कि भगवान श्रीराम का जन्म-स्थान दर्शन करके सरयू नदी में स्नान के पश्चात् भोजन करने जाने पर हमने देखा कि राम-भक्त हनुमानों ने, बस के भीतर जाकर हमारे भोजन को तहस-नहस कर दिया है। मैंने देखा, महाराज निर्विकार हैं। जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो। किसी प्रकार कुछ भोजन करके हमलोग वापस लखनऊ आ गये। तत्पश्चात् (कोलकाता) वापस आते समय उनके साथ मैं काशी गया था। मैंने एक दिन महाराज से कहा, ''चार पैसा दीजिएगा, बादाम खरीदूँगा।'' उन्होंने कहा, ''दे सकता हूँ, किन्तु वह पैसा तुमको वापस करना पड़ेगा।'' मैंने कहा, ''तो फिर मुझे पैसा नहीं चाहिए।'' मैं जानता था कि वे मेरे साथ विनोद कर रहे हैं। उसके बाद मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, ''सुनो, पैसा के बारे में मैं बहुत सावधान हूँ। एक बार हमलोग कहीं जा रहे थे, स्वामी हितानन्द एवं स्वामी वीतशोकानन्द महाराज ने पान खाने की इच्छा प्रकट की। मैंने दस रुपये का एक नोट उनको दे दिया। वे पानवाले के पास वही नोट लेकर गये। पानवाले ने कहा, उसके पास छुट्टा नहीं है। हितानन्द ने तब कहा, 'अरे! यह विजय महाराज का रुपया है। क्या वह कभी तोड़ना चाहता है!' '' स्वयं को लेकर यदि कोई विनोद करता है, तो अत्यन्त हास्य की सृष्टि होती है।

१९७० ई. के सितम्बर माह में कई दिनों तक निरन्तर वर्षा होने के कारण पूर्व कोलकाता डूब गया था। हमलोगों ने अद्वैत आश्रम से राहत-कार्य किया था। महाराज उस समय राहत-कार्य के प्रभारी थे। मेरे द्वारा चावल, दाल, पावरोटी के लिए पैसा माँगने पर उन्होंने कहा था, ''सुनो, विशाल हृदय का होना अच्छा है, परन्तु रुपया-पैसा का हिसाब अच्छी तरह से रखना। जनता का दिया हुआ दान जनता

की सेवा में व्यय होगा। तुम उन सबको अपनी शुभेच्छा एवं नि:स्वार्थपरता देना।''

१९७१ ई. में स्वामीजी की जन्मतिथि के दिन बेलूड़ मठ में गम्भीरानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा, ''तुमको हालीवूड जाना होगा। तुम तैयार हो जाओ।'' मैं इसके लिए किसी भी प्रकार से तैयार नहीं था। मैंने कहा, ''गलत चयन हो गया। कितने वरिष्ठ, विद्वान संन्यासी हैं, उनको भेजिए।'' उन्होंने कहा, ''यदि तुम नहीं जाना चाहते हो, तो मुझे बताना। मैं सभा में तुम्हारा विचार रखूँगा।'' मैं चुप हो गया। पूजनीय निर्वाणानन्द जी महाराज ने मुझे पहले ही बता दिया था, ''तुम जाने के लिए 'ना' नहीं कहना।'' जो भी हो, स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज मेरे लिए स्नेहमयी माँ के जैसे थे। उन्होंने मुझे साहस देते हुए कहा, ''ठाकुर का कार्य है। न्यासीगण तुमको जहाँ भेजें, वहाँ चले जाना। तुम्हारे जैसे अच्छे लड़के को हॉलीवूड में भेजने की हमारी इच्छा नहीं थी; परन्तु वन्दनानन्द की जगह प्रभवानन्द जी के पास एक सहायक संन्यासी के रूप में हमें किसी को भेजना है।'' मैंने कहा, ''मैं अमेरिका में जाकर 'रामकृष्ण हिप्पी मूवमेन्ट' प्रारम्भ कर दूँ, तो आपलोग क्या करेंगे?'' महाराज, यह सुनकर हँसने लगे। हमलोग उनसे निर्भय होकर उन्मुक्त रूप से अपनी बातें कह सकते थे।

अन्तत: २७ मई, १९७१ ई. को बेलूड़ मठ से अमेरिका के लिए मैंने यात्रा आरम्भ किया। जाने के पूर्व महाराज ने कहा, ''सुनो, कल सुबह तुम मेरे साथ नाश्ता करना, मैं तुमको टेबल मैनर्स सिखाऊँगा।'' उन दिनों मिशन कार्यालय (बेलूड़ मठ के मुख्य मन्दिर के सामने दो मंजिला मकान) के ऊपरी तल्ले के दाहिनी ओर के कमरे में महाराज रहते थे। उनके साथ बैठकर मैंने नाश्ता किया। नाश्ता में – दो टोस्ट, एक सिंगापुरी केला, एक प्रसादी सन्देश (मिठाई) और चाय थी। उन्होंने कहा, ''मनुष्य को प्रेम से अपना बना लेने पर विदेश ही स्वदेश हो जाता है।'' और उन्होंने अनेक अच्छी-अच्छी बातें बतलायी थीं। सभी स्मरण नहीं हैं।

११ जून, १९७१ को हॉलीवूड पहुँचा। महाराज के साथ पत्र-व्यवहार चलता था। परवर्ती काल में, १९७७ ई. में मैं भारत आया। महाराज उस समय मठ-मिशन के उपाध्यक्ष थे और काँकुड़गाछी आश्रम में रहते थे। भारत में रहते समय मैंने भारत-भ्रमण अधिक नहीं किया था, छुट्टी भी नहीं मिलती थी और रुपया-पैसा भी नहीं था। अमरनाथ, केदारनाथ, बद्रीनाथ का दर्शन करके, नेपाल में पशुपतिनाथ का दर्शन करने जाऊँगा। ११ अगस्त को मैंने महाराज से कहा, ''महाराज, क्या आप नेपाल जायेंगे?'' उन्होंने कहा, ''यदि, तुम ले चलोगे, तो जाऊँगा।'' मैंने उत्तर दिया, ''चलिए। मैं आपके सेवक के रूप में जाऊँगा।'' महाराज ने कहा, ''नहीं, नहीं, सेवक के रूप में तुम अच्छे नहीं लगोगे। शिखरेश (स्वामी भुवनेश्वरानन्द) मेरा सेवक है।'' मैंने उत्तर दिया, ''अच्छा। मैं शिखरेश का भी भाड़ा दूँगा।'' हम लोगों के साथ पियूष महाराज (स्वामी पूजानन्द) भी गये थे।

२४ अगस्त को हमलोग हवाई जहाज से काठमाण्डु गये और रत्न नामक नेपाली ब्रह्मचारी के पूर्वाश्रम में ठहरे। उनके पिताजी डॉक्टर पौदयाल ने हम सबका हवाईअड्डा पर स्वागत किया। इसी दिन सन्ध्या समय हमलोगों ने पशुपतिनाथजी की आरती देखी। २५ अगस्त को रत्न के पिताजी और उसके चाचा (नेपाल महाराजा के उच्च पदस्थ पदाधिकारी) ने बहुत अच्छी गाड़ी करके गाईड के साथ हमलोगों को सभी दर्शनीय स्थलों – बूढ़ा नीलकण्ठ, गुह्येश्वरी मन्दिर, स्वयम्भुनाथ, महाबोधी, भरतपुर का दतात्रेय मन्दिर – की देखने की व्यवस्था की। हमलोग सुबह सबसे पहले पशुपतिनाथ मन्दिर में पूजा करने गये। महाराज के लिए विशेष दर्शन की व्यवस्था हुई थी। शिव-दर्शन करके महाराज मन्दिर के सामने एक सीढ़ी पर बैठकर चादर से हाथ ढँककर जप करने लगे। वह चित्र अभी भी मेरे मानस-पटल पर ज्वलन्त रूप से अंकित है। १९५९ ई. में काशी में स्वामी हरिप्रेमानन्द जी (श्रीमाँ सारदा के शिष्य) ने 'मन्दिर में देव-विग्रह का कैसे दर्शन करना चाहिए' इसकी शिक्षा मुझे दी थी। विश्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह में तो बहुत भीड़ रहती है। इसलिए बाहर आकर सफेद पत्थर के बेंच पर बैठकर दस-पन्द्रह मिनट विग्रह-दर्शन का चिन्तन-मनन तथा जप करना चाहिए। इससे मन पर एक गम्भीर छाप पड़ती है। महाराज को भी तो ऐसा ही करते हुए देखा। इन सभी वरिष्ठ संन्यासियों से कितना कुछ सीखने का है! **(क्रमश:)**

जहाँ किसी का कोई नहीं, यहाँ तक कि हम भी अपने नहीं, उसे ही संसार कहते हैं।

नाम नामी एक, यह धारणा मन में जितनी दृढ़ कर पाओगे उतना ही उनका आविर्भाव, उनका सान्निध्य अपने प्राणों में अनुभव करोगे। – स्वामी विरजानन्द

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा कोरोना वायरस-त्रासदी राहत-कार्य किया गया। प्रस्तुत हैं उसका संक्षिप्त विवरण –

दिल्ली में २६ से ३१ मार्च तक ३३९१ लोगों को खिचड़ी बाँटी गयी। **लखनउ** के द्वारा २५ मार्च को लखनउ और अयोध्या में अभावग्रस्तों को चावल, दाल, आलू, तेल, नमक, साबून वितरित किये गये। **वृन्दावन** के द्वारा २७ से ३० मार्च तक १८०० लोगों को खिचड़ी दी गयी और सस्पेक्टेड कोरोना रोगियों के लिए क्लीनिक की व्यवस्था की गई। **ऋषिकेश** में २५ से ३० मार्च तक १८०० पैकेट ब्रेड बाँटे गये।

जमशेदपुर ने ३१ मार्च को १०० परिवारों को राशन दिया। **राँची, मोराबादी** में २००० पत्रक, मास्क १९०२, साबुन ३६१०, चावल १६ क्विं., दाल ३ क्विं. बाँटे गए।

मुम्बई में २६ से ३१ मार्च तक २९७५ लोगों को खिचड़ी और पानी के बोतल बाँटे गए। **पुणे** में २४ से २६ मार्च तक ३२ परिवारों को राशन दिया गया और २९ मार्च से कोल्हापुर में ७० लोगों को कई दिनों तक खिचड़ी बाँटी गयी।

लिमड़ी में २८ से ३० मार्च तक १५१३ परिवारों को चावल, आटा, दाल, तेल, आलू, प्याज, चीनी, मसाला, चाय बाँटे गये। **राजकोट** में ३० मार्च को १८० परिवारों को चावल, आटा, दाल, तेल, आलू, प्याज, चीनी, मसाला, चाय, बिस्कुट, साबुन बाँटे गये। **बड़ौदा** में ३१ मार्च को २०० भोजन-पैकेट और १००० पैकेट फारसन और बिस्कुट पैकेट बाँटे गए।

चेन्नई में २७ से ३१ मार्च तक मयूर गाँव में १५०० लोगों को खिचड़ी बाँटी गयी। २५ से २८ मार्च तक चेन्नई नगर निगम के सफाई कर्मचारियों को १००० फेसमास्क, ५०० हैन्डग्लोव, २००० पैकेट बिस्कुट बाँटे गये। २७ से ३१ मार्च तक तन्जोर जिले में १७० परिवारों को चावल, दाल, मसाला, चीनी दिए गये। **कड़प्पा** – २९ से ३१ मार्च तक कड़प्पा जिले के भिखारियों को ६०० अल्पाहार के पैकेट बाँटे गये। **विजयवाड़ा** – २६ से ३० मार्च तक गुंटुर जिले में १००० मास्क, २०० ग्लोब और राशन किट बाँटे गये।

मैसूर ने २६-३१ मार्च तक १००० को खिचड़ी बाँटी।

पोन्नमपेट में ४४० लोगों को खिचड़ी बाँटी गयी। **शिवनहली** में २६ से ३१ मार्च तक २००० लोगों को खिचड़ी बाँटी गयी। **कोयम्बटुर मठ** के द्वारा २७ से ३० तक ५५० लोगों को भोजन दिया गया। **कोयम्बटुर मिशन** के द्वारा २५ मार्च को कोयम्बटुर जिले के चार पंचायतों में २१५ परिवारों को चावल, दाल बाँटा गया और ३१ मार्च को रोड की झोपड़ियों में रहनेवाले लोगों को ३२० भोजन पैकेट दिए गए। **उड़िसा, कोठार** में ९०० हैंड सेनिटाइजर बाँटा गया।

अलांग में ३० मार्च को स्वास्थ्य जागरण शिविर लगाया गया।

गोहाटी में २९ मार्च को ४४ परिवारों को चावल, दाल, आलू, हैन्डवाश सेनीटाइजर और १०० मास्क बाँटे गए।

करीमगंज में ३१ मार्च को २७० परिवारों को चावल, दाल, आलू, नमक, साबून, बिस्कुट बाँटे गए।

सारदापीठ में १६ और २३ मार्च को स्वास्थ्य जागरण रैली निकाली गयी और २३ से ३१ मार्च तक हावड़ा जिले के ११३६ परिवारों को चावल, दाल, आलू, नमक, तेल, बिस्कुट, ४०९१ साबून, ६२१२ मास्क और ९८५ सेनीटाइजर बाँटे गए। **सारगाछी** में २५ से २९ मार्च तक बरहमपुर में ५ हजार साबून, ३० परिवारों को चावल, १०० बच्चों को दूध, मास्क, सेनीटाइजर बाँटे गये।

दक्षिण अफ्रिका, डरबन में मार्च के अन्त में ११०० हाइजिन किट बाँटे गए, जिसमें १ सेनीटाइजर, ३ साबुन और ब्लीच था। **श्रीलंका, कोलम्बो** में २७ से ३१ मार्च तक ३८१ परिवारों को चावल, आटा, दाल, आलू, प्याज, नमक, नुडल, सोयाबीन, मसाला, दूध, चीनी, बिस्कुट दिये गये।

रामकृष्ण मठ, प्रयागराज ने माघ मेला के उपलक्ष्य में त्रिवेणी संगम पर ८ जनवरी से ११ फरवरी, २०२० तक शिविर आयोजित किया। इसमें भक्तों को भोजन-आवास की सुविधाओं के साथ भक्ति-संगीत, प्रवचन, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द पर प्रदर्शनी का भी आयोजन हुआ। १४,२८५ रोगियों की चिकित्सा भी गई।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में २५ फरवरी, २०२० को श्रीरामकृष्ण देव की जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और संस्था के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्माजी ने व्याख्यान दिये।